मयूर-प्रकाशन
झाँसी

ऐसा वैसा

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

प्रथमावृत्ति १९५८
मूल्य २)

ऐसा-वैसा

(मौलिक उपन्यास)

173०

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

(रचयिता—'प्राणदण्ड', 'नाना फडनवीस', 'सन् सत्तावन की क्रान्ति', 'चालीस दिन की कहानी', 'रूप और रुपया' आदि)

मयूर प्रकाशन
झाँसी

प्रकाशक.—

सत्यदेव वर्मा, बी ए एल-एल बी.

मयूर प्रकाशन, झांसी ।

प्रथमावृत्ति १९५८

मूल्य दो रुपया

मुद्रक:—

स्वाधीन प्रेस, झांसी।

अनुरोध

मै नहीं जानता कि प्रकाशक महोदय इस उपन्यास के प्रकाशित करने मे कितना विलम्ब करेगे। पर मैने इसे आज ३० जनवरी को, बापू की पुण्य-तिथि के दिन समाप्त किया है। हम कृतघ्न भारतीय ३० जनवरी के महत्व तथा उसकी मर्यादा को भूल गये है। यदि सरकार इस तारीख की याद न दिलाये तो अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बार बार गाँधी जी का नाम लेकर कसमे खाने वाले सभी विचारधाराओं के राजनैतिज्ञो को भी यह दिन याद न रहे।

आज महात्मा गांधी की हत्या हुई थी—आज भारतीय सभ्यता, संस्कृति, सौष्ठव तथा स्नेह का गला घोटने का प्रयास किया गया था। गांधी जी ने प्राण देकर इनको बचा लिया। जब तक आकाश में उनके हृदय से निकले रक्त के छींटे का एक अणु भी वर्त्तमान रहेगा, भारतीय जीवन से इन वस्तुओं को समाप्त कर देने वालों का प्रयत्न सफल न होगा।

देश का भविष्य उसके नवयुवक-नवयुवतियो के हाथ मे है—उनके हाथ मे है जो आज स्कूल, कालेज में शिक्षा पा रहे है तथा उनके यौवन पर उनको ही नही, हमको भी अभिमान है। पर यह समुदाय किधर जा रहा है ? क्या हमे अपने छात्र-छात्राओ पर अभिमान है ? क्या हम यह अनुभव करते है कि हमारा अध्यापकवर्ग अपने पेट के प्रति सतर्क होते हुये भी देश के प्रति भी सर्तक है ? क्या हमारे नवयुवक नव-युवतियो के जीवन मे जो आंधी उठी है उसकी जिम्मेदारी पिता माता तथा अभिभावकों पर नही है ? क्या समूचा समाज अपनी उदासी, लापरवाही तथा गुण दोष को लेकर भारत के होनहारो के जीवन को नष्ट करने का संकल्प नहीं कर रहा है।

जब मैंने "कहा-सुनी" उपन्यास समाप्त किया, मुझे आशा नहीं थी कि आंकडे तथा उपन्यास के मेल को लोग इतना पसन्द करेंगे, लोगों को ऐसा भी प्रतीत होगा कि इस समय ऐसे उपन्यासों की आवश्यकता है जिससे जानकारी भी बढ़े, कहानी का भी आनन्द आवे और हिन्दी साहित्य की भी कुछ सेवा हो सके।

कुछ मित्रों ने लिखा कि उपन्यास पढ़ते-पढते रो पड़ा। हमारे समाज की दशा ही ऐसी है कि आंखों मे आंसू आ जावेगा। "ऐस–वैसा" उपन्यास भी; सम्भव है, बहुतों के नेत्रों मे पानी भरदे। समाज के सड़े अंग मे थोडी चेतना पैदा करदे तथा हमारे नवयुवक-नवयुवती समाज की आंखे खोल दें। विद्यार्थी-जीवन इस उपन्यास की पृष्ठिभूमि है। आंकडे इसके अलंकार हैं। घटनायें हृदय को चोट पहुँचाती हैं। इसमें चित्र है उच्छृंखल जीवन की सीमा और संधि का। इस उपन्यास मे एक बात है। सभी परिच्छेद बराबर पृष्ठ के है। अन्तिम तीन परिच्छेद जानबूझकर मैंने छोटा कर दिया है–शायद शगुन बैठ जाय।

मै पाठकों से यही अनुरोध करूँगा कि इसे पढने का कष्ट करे। इसमें जो नाम आये है। सभी काल्पनिक हैं। घटनाये भी मेरी कल्पना हैं पर आजकल के जीवन मे सत्य से दूर नहीं है। समाज की दशा पर पाठको के नेत्रो से गिरा एक बून्द भी अश्रु मेरे लिये अपार निधि होगा।

३० जनवरी, १९५८.
बिहारी निवास, कानपुर। परिपूर्णानन्द वर्म्मा

ऐसा-वैसा

दरवाज़ा धीरे से खुला, पूरा नहीं, केवल इतना ही कि एक सुन्दर, मुलायम हाथ काग़ज़ का एक टुकड़ा फेंक सके। ऐसा लगता था कि द्वार खोलने वाला काफी घबड़ाया हुआ था—या घबड़ायी हुई थी। एक चौथाई द्वार खुला छोड़कर हाथ वापस चला गया।

पास की नदी में सूरज को डूबे अभी एक घण्टा भी नहीं हुआ होगा। अन्धेरी रात थी। कमरे मे बिजली जल रही थी, सम्भव है वह दिन भर जलती रही हो। सम्भव है इस कमरे के मालिक को बिजली का बिल नहीं चुकाना पड़ता है। इसलिये प्राय: हरेक मुफ्तखोर बिजली के उपभोक्ता के समान वह भी पंखा या प्रकाश का बटन बन्द करना आवश्यक नहीं समझता। व्यर्थ बिजली की शक्ति नष्ट करने से राष्ट्र की शक्ति नष्ट होती है, यह बात कोई समझना नहीं चाहता।

मेज़ पर बेतरतीब, अस्त-व्यस्त पुस्तकें पड़ी या पटकी हुई थीं। कुर्सी के ऊपर कई कपड़े संकट में पड़े हुये थे। बिस्तरा इतना गींजा और बिखरा सा था मानो उस पर सोने वाले ने महीनों से उसे झाड़ा तक नहीं था। उग़ालदान में आधा चबाया हुआ पान अधिक था या पीक, यह कहना कठिन है। मेज़ पर एक तश्तरी थी जिसमे लगभग डेढ़ दर्जन सिगरटों की जली ठूँठ पड़ी हुई थीं। कमरे मे दरी तो नहीं थी पर फटे फेके कागज़ों की बदौलत फर्श नङ्गा नहीं था। आधी उलटी हुई एक सुराही

पर मच्छड़ भिनभिना रहे थे। यह सब देखने से ऐसा लगता था यह कमरा आज तक किसी ऐसे विद्यार्थी का है जो कालेज का छात्र है और जिस मकान मे रहता है, वह छात्रावास है—होस्टल है।

यकायक धड़ की आवाज़ हुई और दरवाज़ा ज़ोर से खुला। काफी अच्छा सूट-बूट पहने, मुँह मे सिगरेट दबाये, एक सुन्दर युवक ने कमरे मे पैर रखा। उसके पीछे एक और युवक था पर देखने में न तो उतना सुन्दर था और न कुर्ता-धोती में प्रभावोत्पादक प्रतीत होता था। अपने हैट को लापरवाही से खाट पर फेंकते हुये सुन्दर युवक ने पीछे मुड़कर कहा, 'जनाब, कुछ पढ़िये कि संसार के अन्य स्वतन्त्र देश कितना आगे बढ़ गये हैं। हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान की रट लगाये रहते हो। चीन के बारे मे नयी रिपोर्ट पढ़ी है?'

इतना कहते कहते युवक परेश ने अपना जूता एक कोने मे उछाल दिया था, कोट खूँटी पर टांग चुका था और टाई की गांठ से उलझने के लिये कपड़ों से लदी कुर्सी पर बैठ गया था। उसने अपनी दोनों टांग मेज़ पर लदी पुस्तकों पर फेंक दीं।

दूसरा युवक कमरे में चारों ओर की गन्दगी पर दृष्टि दौड़ाते हुये बोला, 'जी हाँ पढ़ा है। अधिकांश आंकड़े 'प्रतिशत'–फी सदी मे है, इतनी प्रतिशत् प्रगति हुई। वैसे ही कि कोई स्कूल कहे हमारे यहां शत-प्रतिशत विद्यार्थी परीक्षा मे पास होते हैं। विद्यार्थियों की संख्या पूछिये तो पता चलेगा कि एक विद्यार्थी परीक्षा में बैठा था, वह पास हो गया। हो गया न शत्-प्रतिशत्!'

परेश ने भौंह सिकोड़ कर सिगरेट का धुँआ अपने गले के नीचे उतारते हुये उत्तर दिया, 'मनोहर, तुम तो बहस करते हो। पता है कि चीन शिक्षा पर ही कितना व्यय कर रहा है?'

मनोहर ने खाट के एक कोने पर बैठते हुये कहा, 'भाई, भगवान करे वे खर्च करें। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है। पर मैं तो यही कहता हूँ कि हमारा देश भी लापरवाह नहीं है। चीनी आंकड़ों को पढ़ते समय यह न भूलिये कि उनका सिक्का मुआन है। और ४७०० मुआन हमारे एक रुपये के बराबर होते हैं।'

परेश ने राख की तश्तरी में सिगरेट को कुचलते हुए तीखे स्वर में कहा, 'आपको क्या मालूम कि आपकी सरकार नौजवानों को बेकार और भूखा मार रही है। इसी माह चीन की पंचवर्षीय योजना समाप्त हो रही है और ७० लाख नौजवानों को नौकरी देने का कार्यक्रम पूरा हो गया है।'

मनोहर ने बिस्तरे को हाथ से झाड़ने का प्रयत्न करते हुए उत्तर दिया, 'अवश्य बधाई की बात है। ६० करोड़ की आबादी में ७० लाख नवयुवकों का प्रबन्ध प्रशंसनीय है। पर, हमारी योजना मे ३६ करोड़ की आबादी मे ८२ लाख की जीविका का प्रबन्ध है।'

'प्रबन्ध नहीं पत्थर है।'

'पत्थर भी प्रबन्ध का एक अंग होता है। जहां आपने ७० लाख की जीविका का प्रबन्ध पढ़ा वही यह भी लिखा था कि अब भी १ करोड़ ७० लाख नवयुवक चीन मे बेकार हैं और भारत मे लगभग ५० लाख।'

परेश उठ खड़ा हुआ। यदि इस समय उसके पैरों में जूता होता तो मनोहर पर अवश्य फेंक देता। अपने देश को निकम्मा समझने वाले विद्यार्थी का अन्तिम तर्क यही होता है। हम जो बात सोचते है उसे यदि कोई ग़लत साबित कर दे तो यह कितनी ग्लानि की बात होगी। दुर्बल की ग्लानि क्रोध का रूप

धारण कर लेती है। परेश का क्रोध पैरों में उतर आया। उसने लात फटकारी, बोझ से लदा उगालदान ढुलक पड़ा। वह चिल्ला पड़ा 'चोर हैं चोर हिन्दुस्तानी और चोर है आपकी सरकार।' परेश के मुँह से इतना ही निकला।

उसने उगालदान को सम्भाला नहीं।

मनोहर भी उठ खड़ा हुआ। उसके सारे चेहरे पर आवेश की लाली दौड़ गई। 'और आप क्या हैं! विलायती हैं!! लज्जा नहीं आती अपने देश को, अपने माता पिता को चोर कहने मे?'

परेश ने हिन्दुस्तानियों को चोर कहा था, अपने माता पिता को नहीं। माता पिता चोर हों या न हों, पर चोर की सन्तान बनने का कलंक उसके लिये असहनीय था। नैतिकता और अनैतिकता का माप दण्ड अपना स्वार्थ होता है। राख तथा जले सिगरेटों से भरी तश्तरी हवा में उड़ी और यदि मनोहर सतर्क न होता तो उसके सर से टकराने ही वाली थी पर बिखर पड़ी अपना ढेर लिये हुए खाट पर। दाँत पीसते हुए परेश ने कहा, 'निकल जाओ यहां से!'

'जी नहीं, मुझे अभी इस कमरे में बहुत काम करना है। मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारी इधर-उधर बिखरी पुस्तकें तुम्हारे मस्तिष्क का परिचय दे रही हैं। जिसकी पुस्तके अस्त-व्यस्त रहती हैं उसका मस्तिष्क भी अस्त-व्यस्त रहता है। जो अपना कमरा ठीक से नहीं रख सकता वह अपने घर या देश को ठीक रखने की बात कैसे सोच सकता है।'

और जैसे कुछ हुआ ही नहीं है, मनोहर पहले पलंग की सफ़ाई में जुट गया। एक मिनट तक परेश सन्न-सा खड़ा रहा और फिर बड़बड़ाता हुआ द्वार की ओर बढ़ा, 'लो, तुम नहीं जाते हो तो मैं ही जाता हूँ।'

द्वार जोर से बन्द करता हुआ वह बाहर निकल गया।

होस्टल से कुछ दूर, मैदान में एक वृक्ष के नीचे उर्मिला खड़ी थी। अंधेरे मे चलकर परेश के नेत्र स्थिर हो चुके थे। वह अनायास ही इस चिर-परिचित वृक्ष की ओर चल पड़ा था पर उर्मिला इस समय मिल जावेगी, इसकी उसे आशा न थी।

'ओ डियर'—कहते कहते उसने उर्मिला का हाथ पकड़ लिया किन्तु, उर्मिला अपने को छुड़ाती हुई घबड़ाती सी बोली, 'पत्र पढ़ लिया न!'

'कैसा पत्र'

'क्यों, मै तुम्हारे कमरे मे फेक आई थी।'

'अरे-कब-सच मैने...' परेश चीख उठा।

'धीरे बोलो। बको मत। तब तुम यहां आये कैसे!'

'गजब हो गया। मेरे कमरे मे मनोहर है, कहीं उसने तो · '

'जाओ देखो'—बहुत घबड़ाकर उर्मिला ने कहा, 'मैं तो आज यह बहाना करके आई थी कि मेरी अंगूठी खो गई है, ढूँढ़ने जा रही हूँ। जल्दी जाओ। हां यह और सुन लो—अब यहां फिर कभी न मिलना।'

और, परेश से पहले ही उर्मिला वहां से चली गई।

(२)

कुछ देर तक परेश रास्ते में खड़ा रहा। कुछ न कुछ हो गया है, जिससे उर्मिला घबड़ायी हुई है। उसकी रस भरी बड़ी बड़ी आँखों मे किसी न किसी के प्रति विद्रोह उमड़ रहा था। अँधेरे मे भी उसके नेत्र चमक रहे थे। समाज के प्रति, नारी जाति पर लगे बंधनों के प्रति, या हो सकता है कि परेश के प्रति ही विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। उसकी आंच परेश के हृदय तक पहुँची थी।

यह बूढ़ा वृक्ष जमाना देख चुका है। उस समय भी वह यहीं खड़ा था जब किसानों की झोपड़ियां गिराकर एक विशाल भवन की नींव रखी गयी थी। अंग्रेजों ने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था। इस वृक्ष के कई साथी धराशायी हो चुके थे। यह विचारा भी अपने दिन गिन रहा था कि एक दिन इन्जीनियर साहब की मेम साहब इधर घूमने आ निकलीं। अशोक के वृक्ष की लम्बी, हरी भरी, चिकनी बाहों मे उलझ कर वे साहब से कहने लगीं, 'कैसा सुन्दर वृक्ष है। इसे यों ही रहने दो।' तब से यह वृक्ष नारी जाति के प्रति बड़ा कृतज्ञ है। पर उसे अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता था। कालेज में लड़कियां आती ही नहीं थीं। लड़के भी कुछ ऐसे रूखे होते थे कि अपनी पुस्तकों मे खपे रहते थे। पेड़ की साया का सहारा भी लेते तो केवल पुस्तकों को चाट जाने के लिये। कभी कोई अध्यापक उधर से निकल गया तो वे अनायास उठकर खड़े हो जाते और उनकी आकृति से पता चलता था कि वे या तो उस अध्यापक से डरते हैं या उसका बड़ा आदर करते हैं।

धीरे-धीरे पेड़ की दायीं ओर लड़कों का छात्रावास बना, बायीं ओर लड़कियों का। पहले पहल दो चार अध-खिली सुन्दरियों ने विद्यालय के प्रांगण मे प्रवेश किया। सकुचाई हुई, सहमी हुई, भयभीत और सौम्य। पढ़ते पढ़ते उनके चेहरे की लुनाई निखरती जाती थी, यौवन उमड़ता आता था और गरिमा की मिठास बढ़ती जाती थी। वे भी वृक्ष की साया का सहारा लेती थीं और वृक्ष भी उनके ऊपर अपना दुपट्टा फैलाकर हल्की बयार चला देता था। लड़कियों को पेड़ के नीचे देखकर लड़के दूर से ही रास्ता बदल देते थे।

जमाने ने फिर पलटा खाया। अब तो अध्यापक को पास से जाते देखकर लड़के अपनी टांगे और लम्बी फैला देते हैं।

उनकी सिगरेट का धुआं भी उसी दिशा में उड़ता है। अध्यापक भी चेष्टा करते हैं कि इस प्रकार के अनादर के दायरे से जितनी जल्दी हट जायँ, अच्छा है। अध्यापक जैसे विद्यार्थी को देखकर 'झेंप' जाता हो। वृक्ष के नीचे लड़के कभी अकेले नहीं होते। लड़कियों को देखकर वे अनायास उमड़ पड़ते हैं। लड़कियों में से कुछ ऐसी शोख हैं कि वे लड़कों को देखकर उधर ही झुक पड़ती हैं।

अब यह वृक्ष अध्ययनशील विद्यार्थियों के पाठ याद करने का स्थान नही है। यहां, इसके नीचे दिल लुटता या लुटाया जाता है। आखे लड़ती या लड़ायी जाती हैं। इसकी मोटी पीठ के नीचे प्रेमियों के पत्र रखने का डॉक का थैला है। नारी जाति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का इस बूढ़े वृक्ष के लिये सुनहला अवसर है। परन्तु बूढ़ा नवजवानों की प्रणय लीला देखकर चञ्चल होकर भी स्थिर दृढ़ रहता है।

उर्मिला ऐसी न जाने कितनी लड़कियों ने अपने भोले-पन मे इसी वृक्ष के नीचे अपना बहुत कुछ खो दिया था। खोकर भी वे अबोध बनी रहीं। वे समझ भी न पायी कि क्या हो रहा है और उनकी दुनियां बिखर गयी। अपने पाप को मन मे तन मे छिपाये वे घर पहुँची और वहां उनके हाथ पीले हो गये। कालेज का अध्याय कालेज मे छूट गया। कुछ भूल गयीं, कुछ भुला न सकीं। घर बस गये। हृदय का बल क्षीणनिर्बल हो गया।

परेश और उर्मिला के माता पिता एक दूसरे से परिचित थे। जब दोनों एक ही कालेज मे, एक ही कक्षा मे दाखिल हुये तो दोनों के अभिभावकों को बड़ा सन्तोष था कि भाई-बहिन एक साथ पढ़ेगे, परेश अपनी बहिन की रक्षा करेगा, देखभाल करेगा। निस्संदेह उनका सम्बन्ध इसी पवित्र आधार पर हुआ भी था।

दोनों एक दूसरे से काफी मिलते रहते, पुस्तकों का आदान-प्रदान होता और किसी विद्यार्थी की भूखी आंखे यदि उर्मिला के रक्तिम कपोलों उनमुक्त हँसी की ओर दौड़तीं तो परेश की लाल-लाल आंखे उन्हे भगा देतीं।

ऐसे ही दोनों चल रहे थे कि एक दिन उर्मिला ने उससे शिकायत की—'··अध्यापक जब मेरी कापी देखने लगते हैं, मेरी उङ्गलियां दबा देते हैं। क्यों।'

उसके इस 'क्यों' मे विश्व का भोलापन छिपा हुआ था। वैसा भोलापन जो प्रत्येक भारतीय कन्या की अपनी निजी विभूति है।

परेश ने उस 'क्यों' कहते हुये खुले होठों को देखा और वह रीझ गया। जैसे अमृत बरस पड़ा हो और वह भींग गया हो। उसे ऐसा लगा कि वह अध्यापक उसी की अमूल्य निधि छीनने आया हो। वह आवेश मे आ गया। उर्मिला का मुख बन्द भी न हो पाया था कि परेश उठ खड़ा हुआ और सीधे उस अध्यापक के कमरे मे घुस गया।

वे देखने में बड़े सीधे-साधे अधेड़ व्यक्ति थे। कम पढ़े-लिखे डिग्री-शुदा प्रोफेसरों के समान अनेक पुस्तकों से घिरे बैठे हुये अपने छिछले मस्तिष्क को नेत्र बन्द करके सहला रहे थे। परेश ने उन्हें चौका दिया। उसके प्रश्न का उत्तर देते हुये उनके नेत्र तिरछे थे, मुख की आकृति टेढ़ी हो गयी थी। 'तुम मुझसे उलझने आये हो। मै क्या सब समझता नही। मैं मनोविज्ञान का अध्यापक हूँ।' 'आप क्या समझते है।' क्रोधावेग मे परेश ने पूछा, 'यही कि आप ऊपर से तो उर्मिला को बहन कहते हैं पर आपके मन के भीतर उसके ऊपर पुरुष-सुलभ स्वामित्व की

भावना है। मूर्ख कहीं का, उससे प्यार करता है पर अपने प्यार को पहचानता भी नहीं है।'

नये युग का, स्वाधीनता तथा समानता के युग का प्रोफेसर यदि अपने विद्यार्थी को ऐसी मनोवैज्ञानिक शिक्षा न देगा तो क्या देगा। परेश अवाक हो गया। उसे ऐसा लगा कि प्रोफेसर ने बड़े ज़ोर का धक्का मार कर उसके बन्द दिमाग का दरवाज़ा खोल दिया है। उसे उर्मिला के खुले मुख का 'क्यों' का भोला सौन्दर्य सजीव प्रेम जैसा लगा। उसने प्रोफेसर को कोई उत्तर नहीं दिया और धीरे धीरे वापस लौटने लगा। प्रोफेसर ने तीखा व्यंग फेका, 'मेरे अनजान दोस्त, मुझे अपना प्रतिद्वन्दी मत समझना। मुझे उससे कोई प्रयोजन नहीं।

बस—उस दिन की दीक्षा ने परेश का मन डॉवाडोल कर दिया। यदि चञ्चल नेत्र नहीं छिपते तो चञ्चल मन भी नहीं छिपता। छिपाये नहीं छिपता। चाहे कितनी ही भोली लड़की हो, वह आंखों का बवण्डर परख लेती है। उर्मिला ने कुछ सोचा ही होगा, पर कैसे और क्यों, परंतु एक दिन उसी बूढ़े वृक्ष की छाया मे परेश को उसने अपने को सौप दिया।

उस दिन से लेकर आज तक की सब घटनाये चल-चित्र की तरह परेश के नेत्रों के सामने घूम गयीं। अभी सात दिन पहले वह छुट्टियों मे शहर गया था और 'बहन उर्मिला' का हाल, उसकी पढ़ाई मे प्रगति तथा कालेज के गंदले जीवन मे उसकी सुशीलता की प्रशंसा अपने तथा उर्मिला के पिता को सुना आया था और आज क्या हो गया कि—

हां, उर्मिला का पत्र उसके कमरे में पड़ा है और निकम्मा मनोहर कमरे की सफाई कर रहा है। यदि पत्र उसके हाथ मे पड़ गया तो! परेश अपने कमरे की ओर भागा।

कमरा एक दम बदल गया था। प्रत्येक वस्तु बड़ी स्वच्छता के साथ, कायदे से रखी हुई थी, यहां तक कि सुराही में पानी भरा था और उसका मुख कपड़े से ढका हुआ था। मेज़ पर, दिखने वाले पैड के ऊपर उर्मिला का पत्र रखा हुआ था।

(३)

हरेक अदालत या कचहरी में एक कमरा होता है जिसमें बेकार वकील अपनी बेकारी काटने के लिये एकत्रित होते हैं और क़ानून को छोड़कर संसार के अन्य सभी फालतू विषयों पर गप्पे लड़ाते हैं। इस कमरे को 'बार लाइब्रेरी' कहते हैं यद्यपि पुस्तालय की पुस्तकों की संख्या कचहरी के सहारे पेट भरने वाले वकीलों की तादाद से काफी कम होती है।

प्राय यह कमरा बहुत ही गंदा, मैला और बेतरतीब होता है। इसका कोई वारिस नहीं, कोई स्वामी नहीं। अच्छे और कामकाजी वकीलों को अपने कमरे से निकलने का अवकाश नहीं रहता। वकालत का पेशा करते करते कोड़ियों वर्ष बिता चुकने वाले वकील जब बूढ़े और अपाहिज से हो जाते हैं और उनका मन घर पर नही लगता, वे इसी कमरे में आकर बैठ जाते हैं और फर्श को थूँक थूँक कर पाटते रहते हैं। सरकारी नौकरियों के उम्मीदवार और अपनी अयोग्यता के कारण असफल वकील भी अपनी जवानी की उमंगे लपेटे यहीं समय काटा करते हैं और सरकार और समाज को कोसा करते हैं। कुछ बिचारे केवल दलाली करके झूठी जमानते दिलवाकर या झूठे शपथ पत्रों का व्यापार यही से चलाते हैं। बेईमान मुकद्दमे-बाजों के लिये अपने काम लायक वकील खोजने का इससे अच्छा स्थान नहीं मिल सकता।

पर, इसी मण्डली में विधुशेखर ऐसे अधेड़ तथा सुशील वकील भी अवश्य बैठे मिलेंगे। सभी जानते हैं कि उनकी वकालत कम चलती है, बात अधिक। अदालतें भी वकील का चरित्र आसानी से पहचान जाती हैं। न्याय के आसन पर बैठने वाला यह पहचान लेता है कि कौन वकील किस सीमा तक सचाई तथा न्याय का हिमायती है। इसीलिये विधुशेखर की सचाई की छाप सभी अदालतों पर है और न्याय की दलीलों में उनकी दुर्बलता की कमी उनकी प्रतिष्ठा पूरी कर देती है। पर, बात करने का उनको इतना शौक था कि वे बिना घण्टे दो घंटे नवयुवक वकीलों से बहस किये मानते न थे। आज उनके पल्ले एक ऐसा वकील पड़ गया जिसने अपनी वकालत चलाने का एक ही उपाय ढूँढ़ निकाला था। वह सरकार के विरोधियों का वकील बन गया था। इसमें अनेक लाभ थे। कानून का ज्ञान चाहे कितना ही कम हो, सरकार का विरोध करना ही साहस तथा प्रतिभा का काम समझा जाता था। यदि और मुकद्दमा जीत गये तो कीर्ति और नाम। यदि हार गये तो 'निकम्मी सरकार के पक्षपात' का डंका पीटा जाता था। अदालत उसकी अशिष्टताओं को आवश्यकता से अधिक सहन कर लेती थी। जन समूह ने १५० वर्षों से 'सरकार का विरोध' करना सीखा था। अब जब अपनी सरकार हो गयी तब भो आदत तो पुरानी ही बनी रही। इसलिये इस कार्य का महत्व पहले से भी अधिक हो गया।

विधुशेखर ने उस नवयुवक वकील के सामने कुर्सी खींचते हुये कहा, 'भ्रष्टाचार, भ्रष्टाचार तो आप बहुत चिल्लाते हैं पर मैं देखता हूँ कि मिसिलों की नाजायज़ नक़लें लेने के लिये चपरासी से लेकर पेशकार तक को सबसे ज्यादा घूस आप ही देते हैं।'

वकील ने मुँह बनाते हुये कहा, 'तब क्या करें। सरकार ही भ्रष्ट है। बिना भ्रष्ट हुये काम ही नहीं चलता।'

'अच्छा, तो अवैध ढङ्ग का काम करने के लिये सरकार ही कहती है।'

'अवैध—नाजायज़! क्या आप कोई भी ऐसा काम इस सरकार का बतला सकते हैं जो वैध हो, जायज हो! मुरादाबाद के कानून सम्मेलन की कार्यवाही पढ़ी आपने! स्मराज्य के बाद हिन्दुस्तान मे २५०० नये क़ानून बने है।'

'गैर क़ानूनी काररवाइयों को रोकने के लिये या जिन चीज़ों को नियम से करना आवश्यक है, उनको नियम तथा न्याय का रूप देना अनुचित है!' विधुशेखर ने आंखे फाड़कर पूछा।

'जितना अधिक कानून होगा उतनी ही अधिक उसके टूटने की सम्भावना होगी। मनुष्य का जीवन उतना ही कठिन हो जावेगा' वकील साहब ने उत्तर दिया।

विधुशेखर ने कुर्सी तिरछी कर दी और व्यंग की हँसी में पूछा, 'अच्छा, इसीलिये रूस और चीन ने अपने देश के शासन की कानून की पोथियां जला दी है। अदालत जो भी फैसला दे, वही क़ानून समझा जाता है।'

नौजवान वकील ने नकली खांसी पैदा की और बाते बदलते हुए कहा, 'आप तो बहस कर रहे थे भ्रष्टाचार के विषय मे। देख रहे हैं आप चारों ओर कितना भ्रष्टाचार है।'

विधुशेखर ने कमरे के सभी लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, 'यह गौरव की नही, लज्जा की बात है। हम आप सबके लिये। आखिर हमारे आपके भाई साथी ही तो भ्रष्ट हैं। हम स्वयं उनके लिये क्या करते है। आज दुनियां भर मे नैतिकता गिरी हुई है। उठाइये, चलिये सब लोग अपना

कर्त्तव्य समझे। सरकार क्या करेगी। पिछले दस साल में उत्तर प्रदेश की ही सरकार ने लगभग ७००० कर्मचारियों को भ्रष्टाचार के दोष में काम से निकाल दिया। ३००० के लगभग जेल भेजे गये। अब गोली मारना और बाकी है।'

अपने ही आवेश की थकावट से वकील विधुशेखर थक कर चुप हो गये। नौजवान वकील को उन्हे अप्रतिम करने का अवसर मिला। वे तपाक से बोले, 'कौन पकड़ता है जनाब। भ्रष्टाचार रोकने वाली पुलिस स्वयं भ्रष्ट है। आज जैसी घूम-खोरी पहले कभी नहीं थी। उत्तर प्रदेश मे हर जिले मे भ्रष्टाचार विरोधी पुलिस अलग से तैनात है। वहीं सबसे ज्यादा भ्रष्ट है। क्या कीजियेगा, रक्तबीज का बना है।'

'जब पुलिस इतनी खराब है तो काहे को आप कल मुझसे पूछ रहे थे कि आपके भाई को थानेदारी के चुनाव में मै कैसे चुनवा सकता हूँ। इसीलिये न कि आप घूस की आमदनी अपने घर मे लाना चाहते हैं।'

बात बेढंगी कह दी गयी। पास में खड़े एक मुसलिम वकील ने अपने नौजवान साथी की सहायता करनी चाही।

'जनाब, सभी थानेदार बेईमान नहीं होते। यह जरूर है कि पुराने ज़माने मे बड़े से लेकर छोटा तक घूसखोर था इसी-लिये एक दस्तूर सा बन गया था। अब छुटभैये मय नेताजी के खाये जा रहे हैं। सरकार से शिकायत तो यही है कि वह कड़ाई से काम नहीं लेती।'

विधुशेखर उठ खड़े हुए। उन्हें विरोधियों का मुँह तोड़ उत्तर देने का अवसर मिल गया। वे चीख उठे, 'कड़ाई किसे कहते हैं। पहली जनवरी १९५२ से लेकर ३१ मार्च, १९५७ तक उत्तर प्रदेश मे ही २,८४८ कान्स्टेबल, १९१ हेड कांस्टेबल,

१३७ सब इन्सपेक्टर, ७ इन्सपेक्टर तथा ३ कोतवाल बर्ख़ास्त किये गये हैं। कहिये, इनमे से आप कितने भाइयों को गोली से उड़ाना चाहते हैं।'

जब कोई उत्तर न सूझ पड़े तो बच्चों की तरह से शोर करना नौजवानों को भी आता है। कमरे में कई वकील एक साथ ताली बजाने लगे। 'वाह वाह, बड़ा अच्छा व्याख्यान है।' और शोर होने लगा। विधुशेखर इन बातों से दबने वाले नहीं थे। वे अपनी आवाज़ और ऊँची करके कुछ कहना ही चाहते थे कि बाहर बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ा। सभी खिड़की के पास दौड़ पड़े। बाहर हज़ारों विद्यार्थियों का जलूस उमड़ा चला जा रहा था। शिक्षा मन्त्री और उनकी सरकार के नाश का नारा लगा रहा था। रास्ते मे जितने गरीब खोंमचे वाले, फल वाले या मिठाई बेचने वाले मिलते गये उनका सामान लूटता और बिखेरता जा रहा था।

कुछ मन चले वकील नीचे दौड़ गये। जब वापस आये तो जलूस का कारण मालूम हुआ। विश्वविद्यालय के लड़कों ने हड़ताल कर दी है। मार्ग के सभी स्कूलों कालेजों में घुसकर हड़ताल करा दी है। जलूस शिक्षा मन्त्री के बंगले की ओर जा रहा है। हड़ताल के कई कारणों मे से तीन तो ये थे—

१. कानून के छात्रों की पढ़ाई सायंकाल दो घण्टे होती थी। वे चाहते थे कि समय डेढ़ घण्टा हो जावे।

२. मेडीकल कालेज के विद्यार्थियों की मांग थी कि ६ माही परीक्षा का फल सालाना परीक्षा मे न जोड़ा जाय।

३. कुछ विद्यार्थी पढ़ाई की हाज़री मे कमी के कारण सालाना परीक्षा से रोक लिये गये थे। उनकी मांग थी कि वे चाहे पढ़ें या न पढ़ें, परीक्षा से न रोके जॉय। विधुशेखर ने सबकी ओर देखकर पूछा, 'देखा, ये हैं भारत के होनहार सपूत!

(४)

कुछ देर तक परेश उस पत्र की ओर देखता रहा। पिछले तीन महीनों के भीतर उर्मिला ने दर्जनों पत्र उसे लिखे थे और उसकी मीठी, लचकीली लिखावट उसके नेत्रों मे चित्र की तरह अंकित थी। यह सही है कि बी० ए० पास करने के चार वर्षों के जीवन मे परेश ने अनेकों नवयुवकों तथा नवयुवतियों का प्रेम कांड प्रारम्भ और समाप्त होते देखा था। उसने बड़ी घृणा तथा ग्लानि के साथ अपने अनेक सहपाठियों की नङ्गी नीचता देखी थी जब वे अबोध कुमारियों की पवित्रता को रौंद कर उन्हे ठुकरा देते थे। उसका कलेजा भर आता था जब वह किसी ऐसी लुटी हुई बालिका के मस्तक पर किसी अनजाने युवक को सिन्दूर चढ़ाते देखता था। वह प्राय. सोचा करता था कि कालेज के जीवन मे क्या लड़के लडकियां भाई बहन की तरह नहीं पढ़ सकते! शरारत और छेड़छाड़ लड़कों की ओर से होती। आग वे ही लगाते। जो लड़कियां स्वरूपवान न होतीं या जिन पर घर का अकुश तीव्र होता, या जो सहज स्वभाव वाली ही अपनी रक्षा करना जानती थीं, वे तो आग की आंच तक भी अपने पास न आने देतीं पर न जाने कितनो भोली सुन्दरियां अनजाने ही आग मे झुलस जाती थीं।

स्वभावत: परेश बुरा लड़का न था। जहां तक चरित्र का सम्बन्ध है, वह इतना निकम्मा भी नहीं था। किन्तु, विद्यार्थी वर्ग मे बढ़ती हुई अनुशासन-हीनता, संयम का अभाव, आवारागर्दी तथा अध्यापकों की अनैतिकता, पढ़ाने के प्रति उदासीनता और अनेक अध्यापकों के लम्पटपन ने उसके दुर्बल मन को दबोच लिया था। अपने समान अनेक अधकचरे नवयुवकों की तरह, उसे उन लोगों की बाते अच्छी लगतीं जो दिन-रात देश और समाज के हर अङ्ग को गाली देते रहते तथा बुरा भला कहते

रहते थे। उनका पेशा था देश मे अराजकता फैलाना, हरेक को उभाड़ कर दङ्गा फसाद करना और हर मौके से फायदा उठाकर सरकार तथा समाज की छाती पर हथौड़ा घालना। उन लोगों को बाहर देश वालों का हरेक काम अच्छा लगता था और अपने देश का सब कुछ निकम्मा प्रतीत होता था। इन लोगों ने नौजवानों को अपनी ओर खींचने के लिये उन्हे ऐसे उपदेश देने शुरू किये थे जिससे उनका मन परिवार तथा समाज के बन्धन से छुटकारा पाने की लालच में आपसे आप विद्रोही बन जावे। वे समझाते थे कि बड़े-बूढ़ों की इज्जत पुराने मनहूस लोग करते थे, सरकार की सेवा या सराहना पुरानी खूसट खुशामदी प्रवृत्ति है, अध्यापक पैसा देकर खरीदा हुआ दास है, उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं उठता। समानता के इस युग मे प्रेम एक स्वतन्त्र वस्तु है, लड़के-लड़कियों का परस्पर सम्बन्ध शरीर तथा मन की स्वाभाविक मांग पर निर्भर करता है।

परेश का स्वभाव बदला, पर धीरे-धीरे। उस दिन यदि मनोविज्ञान के अध्यापक ने उससे छेड़-छाड़ न की होती तो शायद उर्मिला पर इतनी आशक्ति भी न फूट पड़ती। पर, जब धड़का घुल गया, चित्त अपना सतुलन खो बैठा, तब रुकने का कोई कारण नहीं था। उर्मिला के प्रत्येक पत्र से उसे नई स्फूर्ति, नया उन्माद, नया उत्साह प्राप्त होता था। उसने स्वयं उर्मिला को कभी कोई पत्र नहीं लिखा। उसके एक लम्पट साथी उसे समझा चुके थे कि प्रेम का चिन्ह काया पर अकित होना चाहिये, काग़ज़ पर नहीं। काया मौन रहती है पत्र बाचाल होते हैं। काया कलङ्क छिपाये रहती है। लेखनी डङ्का पीट देती है। लिखना खतरे से खाली नहीं।

उर्मिला को परेश के पत्रों की भूख रहती थी। पर बड़ी चतुराई से परेश उसकी मांग टाल देता था। भोली उर्मिला कुछ

न समझी। युवक का प्रेम उन्मुक्त, उन्मत्त और उच्छृंखल होता है। युवती का प्रेम अगाध, अथाह और असीम होता है। लड़की जब प्यार करती है तो समुद्र उड़ेल देती है। उर्मिला के पत्रों मे प्रेम का सागर लहराया करता था।

परेश को आज उसी परिचिता के परिचित पत्र को छूने का साहस नही हो रहा था। मनोहर ने कमरे की सफाई की। उसने इस पत्र को उठाया होगा और उससे इतने सौजन्य की आशा नहीं करनी चाहिये कि वह दूसरे का पत्र बिना पढ़े रख देगा। परेश तो उन छात्रों में से था जो होस्टल के लड़कों की डॉक लापता कर देते है, पत्रों को पढ़कर फाड़ फेकते हैं, विवाहित छात्रों की पत्नियों के पत्र पढ़ने में जिन्हे बड़ा आनन्द आता है। वह मनोहर को अपने जैसा ही समझता था। मनुष्य अपने आईने मे सबका मुख देखता है। बहुत अनर्थ हो गया। मनोहर को उसके रहस्य का पता चल गया। यदि उसने पिताजी को लिख दिया या उर्मिला के पिता जी से कह दिया तब क्या होगा!

आत्म-रक्षा तथा स्वार्थ सब प्रेम स्वाहा कर देता है। कुछ क्षणों तक परेश यह भी सोच गया कि वह उर्मिला के झमेले मे पड़ा ही क्यों। और यदि पड़ भी गया अभी तो कुछ नहीं बिगड़ा है। भौरा कभी एक फूल पर नहीं बैठता। उसे स्मरण हो आया कि कल के समाचार पत्रों मे था कि सन १६५४ मे भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों मे ५,२५,४१७ लड़के तथा ६८,६४४ लड़कियां शिक्षा पा रही थीं। लड़कों की शिक्षा पर २१ करोड़ ४४ लाख रुपया तथा लड़कियों की शिक्षा पर १ करोड़ ८ लाख रुपया खर्च हुआ था। यानी लड़कों की शिक्षा पर फी विद्यार्थी पीछे ४०० रुपये साल तथा फी लड़की पीछे २०० रुपये का

मोटा औसत। उर्मिला ६,८००० लड़कियों मे से एक है। २०० रुपये सालाना बोझ वाली कन्या है। परेश का पद उससे कहीं अधिक बड़ा है। वह उर्मिला को छोड़ भी सकता है। रुकावट क्या है।

पर, धीरे-धीरे स्वार्थ का अन्धापन तथा भय का वेग कम होने लगा। पत्र का आवाहन, उसकी पुकार ने मन को खींचा। फिर भी हाथ संकोच कर रहे थे—मनोहर का छुआ हुआ पत्र, मानो मनोहर ने उसकी उर्मिला को ही छू लिया हो। धन और स्त्री का बहुत बड़ा महत्व यही है कि समानता और स्वाधीनता का कट्टर से कट्टर पुजारी भी किसी अन्य के साथ साझा नहीं करना चाहता।

फिर भी, धीरे-धीरे हाथ पत्र पर चला ही गया। लिखावट से स्पष्ट था कि लिखने वाले को सोचने से अधिक लिखने की जल्दी पड़ी हुई थी। लिखना अधिक था, समय कम था। लिखा था—

'मेरे सब कुछ,

अनर्थ हो गया है। किसी नीच ने यहां से पिताजी को पत्र लिख दिया है कि मै तुमसे प्रेम करती हूँ। प्रेम ही नही है। बात आगे बढ़ गई है। पेड़ के नीचे मिलना वगैर. सब कुछ बतला दिया गया है। पता नहीं वह कौन पापी है जो हमारा सुख नहीं देख सकता। पिताजी ने मुझे तुरन्त घर बुलाया है। यदि किसी दूसरे नगर जाना होता तो मै कुछ बहाना भी बना लेती पर छात्रावास से नगर कितनी दूर है। कब जाऊँ, कैसे जाऊँ, क्या उत्तर दूँ, बहुत परेशान हूँ। घर जाने का साहस नही हो रहा है। कोई उपाय करो कि अभी पिताजी का सामना न हो। बीमारी का बहाना कर सकती हूँ पर कालेज का डाक्टर

यदि बीमार न समझे तो क्या होगा ? मेरे प्यारे, मुझे मार्ग बतलाओ। मैं बड़ी चिन्तित हूँ। हाँ, एक बात और, अब उस वृक्ष के नीचे मत मिलना। आज आ जाओ। मुझे इस पत्र का उत्तर दे दो। फिर कहीं और मिलेंगे।'

परेश ने दोनों हाथों से सर ढक लिया। नेत्र बन्द कर लिये और उर्मिला की रक्षा का उपाय सोचने लगा। शहर से विश्व-विद्यालय पाँच मील की दूरी पर है। आने-जाने की कठिनाई बचाने के लिये उर्मिला तथा परेश दोनों ही अपने घर छोड़कर छात्रावास मे रहते थे यद्यपि वास्तविक कारण था घर से स्वतंत्र होकर रहना। तब, उर्मिला को पाँच मील जाकर अपने पिता से मिलने मे क्या कठिनाई पैदा की जा सकती थी ! सोचते-सोचते यकायक उसके मुख से निकल गया—'कोई उपाय नहीं है।'

'अवश्य है, मै बतलाता हूँ।' आवाज़ आई।

घबड़ाकर परेश खड़ा हो गया। कमरे मे एक कोने मे मनोविज्ञान के अध्यापक खड़े थे। वे आगे बढ़ आये 'घबड़ाओ नहीं। मै मनोवैज्ञानिक हूँ। भारतवर्ष के इने-गिने कुछ दर्जन मनोवैज्ञानिकों मे से एक हूँ। यह भारत है, अमेरिका नहीं जहाँ ४,२००० हैं।'

'जहन्नुम मे जॉय मनोवैज्ञानिक ! आपको क्या मालूम कि मै क्या सोच रहा हूँ।'

अध्यापक जी शान्त मुद्रा मे बोले, 'मै तुमसे मिलने आया था। तुम नहीं थे। पत्र पर आँखे दौड़ गयी। पढ़ लिया। परेशान मत हो, हम लोग एक ही तीर से घायल हैं। हम लोग समझौते से काम ले। मैं तुम्हारी कठिनाई हल करने के लिये ही, जब से तुम इस कमरे मे आये हो, मै कमरे के बाहर खड़ा था। मैं जानता था कि पेड़ के नीचे की भेंट आज जल्दी खतम होगी।'

(५)

जिस वस्तु को हम बुरी समझकर दूसरों के नेत्रों से बचाना चाहते हैं वह न जाने क्यों अधिक से अधिक दूसरों पर प्रकट हो जाती है, उनके सामने आ जाती है। उर्मिला का पत्र मनोहर ने तो पढ़ा ही होगा पर यह दुष्ट अध्यापक कहां से आ मरा। पाठकों को इस अध्यापक का नाम न बतलाना ही उचित होगा। सुविधा के लिये हम इनको प्रोफेसर साहब कहेंगे।

परेश का जी चाहता था कि प्रोफेसर के सर पर कुछ न सही तो कुसा ही पटक दे। पर, वह घाघ अध्यापक ऐसी तीखी और कड़वी हँसी हँस रहा था कि परेश अपने को बेबस अनुभव करने लगा। प्रोफेसर ने देखा कि जादू चल गया। उसने अधिकार पूर्वक कहा—'बैठे जाओ।'

परेश कुर्सी पर बैठ गया। प्रोफेसर उसके सामने मेज का सहारा लेकर खड़े हो गये। बोले, 'सुनो परेश, इस परिस्थिति से उर्मिला को निकालने का एकमात्र उपाय है—हड़ताल।'

'हड़ताल।' परेश चौंक उठा।

'हां, हड़ताल। तुम विद्यार्थी संघ के मन्त्री हो। तुम्हारी पार्टी का बहुमत है। बहुत दिनों से कुछ चहल पहल भी नहीं रही है। हड़ताल करा दो। कुछ उपद्रव होगा ही। उर्मिला को शहर न जाने का बहाना मिल जावेगा।'

परेश सर लटकाये सोचता रहा। धीरे-धीरे उसने सर उठाया, 'किन्तु, बिना कारण के हड़ताल कैसे की जाय।' प्रोफेसर ने अपना भद्दा चेहरा और तिरछा करते हुए कहा, 'जैसे विद्यार्थियों की हड़ताल कभी किसी कारण से होती है। चाहे विद्यार्थी हो या मजदूर उनसे हड़ताल इसलिये कराई जाती है कि उनके नेता को अपने नेतृत्व का विज्ञापन करना होता

है। हड़तालों मे समय नष्ट करने के कारण हज़ारों विद्यार्थियों या नौजवानों का जीवन निकम्मा हो जाता है, मजदूरों की हडतालों के कारण हज़ारों मज़दूर परिवार नष्ट हो जाते हैं पर हड़ताल कराने वाला विद्यार्थी नेता या मजदूर नेता बराबर आगे बढ़ता जाता है। मन से मैं हड़तालों से या हड़तालियों से घृणा करता हूँ पर समय नष्ट करने के लिए, अधिकारियों को परेशान करने के लिए तथा उर्मिला ऐसी सुन्दरी की रक्षा करने के लिये यह ज़रूरी तथा उपयोगी हथियार है। और फिर विद्यार्थी सघ का नया चुनाव आने के पहले तुमको अपनी लीडरी पक्की कर लेनी चाहिये।'

परेश प्रोफेसर का व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुनता रहा। उसके मन मे इस नीच अध्यापक के प्रति घृणा का इतना वेग उमड़ा कि वह बड़ी कठिनाई से अपने को सभाल पा रहा था। प्रोफेसर ने उसे जितना नीचे दर्जे का विद्यार्थी नेता बना दिया था, उतना नीचे वह उतरना नहीं चाहता था। उसने उत्तर दिया—'क्षमा कीजियेगा। मैं लीडरी के लिये हड़ताल नहीं कराता हूँ। अपनी उचित मांग पूरी कराने के लिये मैं इसे विद्यार्थी का जन्म सिद्ध अधिकार समझता हूँ।'

प्रोफेसर ने बात काट कर कहा, 'जाने भी दे मेरे यार। मुझे आया है नसीहत देने। तू जिस विचारधारा का है उस विचार-धारा की जब हुकूमत होता है तो हड़ताल करने वाला विद्यार्थी गोली से उड़ा दिया जाता है और हड़ताली मजदूर जीवन भर जेल मे सड़ा करते हैं। ज़रा किसी ऐसे देश का नाम तो बतलाओ जहां पर प्रजातंत्र न हो, एक के हाथ मे हुकूमत हो और फिर भी वही होता हो जो उत्तरप्रदेश मे हो रहा है। सन् १९५४ मे मज़दूर हड़तालियों का मासिक औसत ३ ५४५ था

और हर महीने काम करने के १३,१६८ घण्टों की हानि हुई थी। सन् १६५५ के एक महीने मे, जुलाई में काम करने के १७,७५००० घण्टे खराब हुये और २६,४०१ मजदूर बेकार रहे। भारत ऐसे गरीब देश मे, जहाँ एक-एक क्षण काम करके सामान पैदा करना, जनता की गरीबी दूर करना है, यह काम बन्दी किसे उचित जँचेगी। चले हो मुझे समझाने !'

परेश सर नीचा किये सुनता रहा। अन्त मे बोला, 'स्टूडेन्ट कौंसिल मे हड़ताल का 'स्टूडेन्ट प्रस्ताव पास कराने के लिये कोई 'कारण' देना होगा।'

'कारण कौन पूछता है। जब विद्यार्थी पढ़ना नहीं चाहता, केवल उपद्रव करना चाहता है, नगर के कुछ ग़रीबों की दूकाने लूटना चाहता है तो वह हड़ताल कर देता है। सज्जन, पढ़ने के शौकोन विद्यार्थी उनकी (ऐसे उपद्रवियों की) गुण्डागिरी के डर के मारे कुछ बोलते नहीं। प्राय' हरेक ऐसी हड़ताल के पीछे राजनैतिक दलों का हाथ होता है जो अधकचरे युवकों को अपना साथी तथा अनुयायी बनाने के लिये उनके मस्निष्क मे हर प्रकार की खुराफात भर कर देश की भावी सन्तान को नष्ट कर रहे हैं।'

प्रोफेसर बोलते ही रहे—'तुम्हारा उद्देश्य है चार पॉच दिन विद्यार्थी समुदाय को काफी उत्तेजित रखना ताकि उसके डर से शहर की दूकाने बन्द रहें, सवारियां न चले, छमाही परीक्षा न पड़े और बड़े दिन की छुट्टी दस दिन बढ़ जावे। तब क्या देर है कारण ढूँढ़ने मे। क्यों, ला कालेज के लड़के चाहते हैं कि डेढ़ घन्टे मे ही उन्हें पढ़ा लिखा कर योग्य बना दिया जावे; मेडीकल कालेज वाले चाहते हैं कि छमाही परीक्षा के नम्बर वार्षिक परीक्षा के साथ न मिलाये जावे—और सभी विद्यार्थी चाहते हैं कि हाज़री–कम से कम हाज़िरी–की विपत्ति समाप्त कर दी जावे। क्या अब भी कारण की देर है ?'

परेश उठकर खड़ा हो गया। उसे आगे का मार्ग सब साफ दिखाई पड़ता था। उसने प्रोफेसर का हाथ पकड़ते हुये कहा, 'खूब कहा आपने। पर यूनियन प्रेसीडेण्ड से पहले ही बातें कर लेनी होगी। कौन जाने वह क्या कहे। हरिजन जो ठहरा, सरकार की पेंशन खाता है, वजीफा पाता है।'

प्रोफेसर ने मुँह बनाते हुये कहा, 'तुम भी पूरे मूर्ख हो। जो लोग सरकार से भत्ता पाते हैं, सहायता पाते हैं या जिनके लिये सरकार सबसे ज्यादा करती है, वही उसके सबसे बड़े शत्रु होते हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ऊपर उपकार करने वाले से वह इसलिये घृणा करता है कि घृणा के द्वारा उसका अहंभाव सन्तुष्ट होता है तथा अपमान का प्रतिशोध भी होता है। तुम्हे मालूम है न कि सन् १९५१-५२ में उत्तर प्रदेश की सरकार ४ लाख १० हजार हरिजन विद्यार्थियों को २६ लाख ६ हजार रुपये वार्षिक सहायता देती थी। अब १० लाख ३६ हजार हरिजन विद्यार्थियों को ७२ लाख रुपया सहायता के रूप में मिलता है। पर, आज सरकार के सबसे बड़े विरोधी हरिजन ही हैं। तुम्हारा प्रेसीडेण्ट तुरन्त राजी हो जावेगा।'

परेश इस अध्यापक की दुष्टता तथा प्रतिभा दोनों पर रीझ सा रहा था। यकायक प्रोफेसर बोल उठे—हां, मनोहर का वर्ग, पढ़ने वाले सीधे-सादे विद्यार्थियों की गोल विरोध करेगी।'

मनोहर का नाम लेते ही परेश का चेहरा तमतमा उठा। उसे स्मरण हो आया कि उस दुष्ट ने उर्मिला का पत्र जरूर पढ़ा होगा। फिर उसे एक बात सूझ गई—मनोहर की ऐसी टांग तोड़ दी जावे कि सदा के लिये निकम्मा हो जाय। हड़ताल में ऐसी दुश्मनी निभाने का बड़ा अवसर मिलता है। परेश की

बची-खुची हिचकिचाहट जाती रही। प्रोफेसर साहब ने समझा कि उनका तर्क ही काम कर रहा है। वे हड़ताल के लिए स्वयं उत्सुक थे। विक्षुब्धा-वातावरण मे वे उर्मिला की निकटता प्राप्त कर सकते थे। दूसरे, कालेज के प्रिंसिपल से उनकी कभी पटती नहीं बैठती थी। उनको नीचा भी दिखाया जा सकता था।

इसी प्रकार के पारस्परिक वैमनस्य या छोटे-मोटे कारणों से स्कूल-कालेज के उपद्रव होते हैं। जिसे हम विद्यार्थियों का असंयम समझते हैं, वह वास्तव में उनके अध्यापकों तथा गुरुजनों और अभिभावकों की सम्मिलित मूर्खताओं या निकम्मापन का परिणाम है।

परेश को हड़ताल के लिये उत्तेजित देखकर प्रोफेसर साहब कमरे से बाहर कब हो गये, यह उस नवयुवक ने नहीं देखा। हां, थोड़ी देर मे वह इसलिये सर धुन रहा था कि उसी की लापरवाही से प्रोफेसर साहब कमरे से जाते समय उर्मिला का पत्र भी लेते गये थे।

(६)

परेश कूद कर कमरे के बाहर हो गया। छात्रावास के एक अङ्ग में प्रोफेसर साहब रहते थे इसलिये कि वे होस्टल के 'वार्डन' थे, यानी विद्यार्थियों के अभिभावक थे। परेश झट से द्वार खोलकर भीतर घुस गया। अध्यापक जी एक कुर्सी पर बैठे अपनी धर्मपत्नी की डांट सुन रहे थे। वे कुछ जोर से बोल रही थीं। परेश के कान बन्द थे—मस्तिष्क मे ज्वार-भाटा आया हुआ था। उसने चीखकर पूछा—'आप उर्मिला का पत्र ले आये हैं!'

'मै—मै—' बनावटी विस्मय से उत्तर मिला। तब तक नारी-सुलभ तीक्ष्ण बुद्धि से उनकी देवी जी पूछ बैठीं—'कौन उर्मिला!'

सकपकाते हुये प्रोफेसर उठ खड़े हुये और पास मे टँगे हुये अपने कोट को पहनने के लिये खूटी से उतारते हुये बोले—हां कौन उर्मिला ! क्या बक रहे हो !'

'मैं नहीं बक रहा हूँ। मै अभी माता जी से सब कहे देता हूँ। लाइये मेरा पत्र !' परेश चिल्ला रहा था।

प्रोफेसर ने कोट पहन लिया था। वे खिड़की के पास पहुँच चुके थे। उनका एक हाथ जेब में था।

देवी जी परेश के सामने खड़ी हो गयीं। वे तन कर उससे पूछ रही थीं—'यह सब क्या मामला है ! कौन है यह उर्मिला ?' कहते हैं कि स्त्री मिट्टी की भी सौत नहीं बर्दाश्त कर सकती। पुरुष पर अपने एकाधिकार की भावना उसमे इतनी प्रबल होती है कि उसकी तीव्र दृष्टि से कुछ नहीं बच सकता। सम्भव है आत्म रक्षा की भावना हो या प्रेम की, पत्नी को कोई साझेदार नहीं चाहिये। देवी जी ने पति की ओर मुड़ कर पूछा,—'यह उर्मिला कौन है !'

इतनी देर मे प्रोफेसर का हाथ खिड़की के बाहर जाकर वापस आ चुका था। परेश की दृष्टि कुछ क्षणके लिये उस देवी के सुन्दर और तमतमाये चेहरे पर भटक गई थी। उसके मनमें अनायास यह भाव उमड़ पड़ा—'इस सुन्दरी का पति है यह निकम्मा आदमी ! इसकी उच्छृङ्खलता उर्मिला पर क्यों बह पड़ी !' फिर वह सोचने लगा—'क्या पुरुष की प्रकृति ही ऐसी होती है ?'

यह क्षणिक विचार समाप्त हुआ। अब वह अध्यापक का सम्पूर्ण भय छोड़कर उनके सामने तनकर खड़ा हो गया। 'आप देते है या नहीं। या मै सब कुछ कह दूँ।'

अध्यापक जी ने अपने मन को सम्भालते हुए कहा,—'देखो परेश, मै जानता हूँ कि तुम उन्मत्त हो रहे हो। तुम अपना सन्तुलन खो बैठे हो। मैने तुम्हारी मूर्खताये बहुत सहन की।

मैं उर्मिला की रक्षा अवश्य करूँगा चाहे तुम मेरी पत्नी से कुछ भी उपन्यास न कह डालो। अब मुझे मजबूरन तुम्हारे तथा उर्मिला के पिता को पत्र लिखना पड़ेगा। यदि पत्र कोई लापता हुआ है तो देख लो मेरा कमरा, मेरा कोट, मेरा बक्स··· ।'

परेश पर बार चल गया। उसके तथा उर्मिला के पिता को यदि सब कुछ मालूम हो गया तो फिर उसका–दोनों का–भविष्य भयंकर हो जावेगा, उसने और अधिक तर्क करना अनुचित समझा। फिर भी उसके चेहरे से घृणा फूट रही थी। उसने इतना ही कहा,–'आजकल आपके ऐसे अध्यापकों ने ही हमारे जैसे विद्यार्थी उत्पन्न किये हैं—।' और वह कमरे के बाहर हो गया।

जो जितना ही लम्पट होता है, वह उतना ही चतुर भी हो जाता है। पराई स्त्रियों या लड़कियों के प्रति जो जितना ही आसक्त होता है वह अपनी पत्नी के सामने उतना ही अधिक सच्चरित्र तथा भक्त बनता है। प्रोफेसर साहब की पत्नी सुन्दर थीं। यही ३७–३८ साल की उम्र होगी। उनकी कन्या १७–१८ वर्ष की हो चुकी है और इसी कालेज में पढ़ती है। इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा देगी।

पत्नी का सन्देह दूर नहीं हुआ था। उनका मन कुछ उलझन में था। एकान्त पाकर वे कठोर शब्दों में बोलीं,—'मेरे प्रश्न का उत्तर दो। यह उर्मिला कौन है ?'

'तुम भी क्या सोचती हो। सच है, स्त्री का चित्त पुरुष से अधिक पापी होता है। तुमने तो देखा है वह लड़की जो कभी कभी छात्रावास से छुट्टी लेने मेरे पास आती है।'

'कौन, वही शहर वाली छोकरी। हमारी राधा के बराबर उम्र वाली न ! हमारी राधा उससे कहीं सुन्दर है। तब उसका क्यों जिक्र आया।'

'परेश उससे प्रेम करता है। मैंने उसका पत्र-व्यवहार बन्द करना चाहा था इसीलिये···'

पत्नी को पूरी बात सुनने का धैर्य नहीं था। वे कुछ आश्वस्त तो ज़रूर हुई पर उनका ध्यान राधा की ओर दौड़ गया था। वे कुछ स्थिर भाव से बोलीं—'देखो, ज़माना बड़ा खराब है। इन कालेज के छोकरों का कोई ठिकाना नहीं। मां-बहन भी नहीं देखते। हमारी राधा भी बड़ी हो चली। अब उसके हाथ पीले करा दे, तब चाहे जितना पढ़ाये। उर्मिला की रक्षा ज़रूर करो। जैसे अपनी लड़की वैसे पराये की लड़की। उर्मिला भी तुम्हारी बेटी के बराबर है।

प्रोफेसर के हृदय पर एक गहरी चोट सी, ठेस-सी लगी। राधा उसकी लड़की है इसलिये वह राधा के प्रति बुरा भाव नहीं रखता। पर, उर्मिला भी राधा के उम्र की ही, उससे एक ही कक्षा आगे है, फिर वह अपनी बेटी· छिः! यह क्षणिक सद्भाव था। उसने मन ही मन सोचा—इस तरह संसार भर की लड़कियों को अपनी लड़की मानने से काम नहीं चलेगा। उसे अपनी पत्नी से सावधान होकर चलना पड़ेगा। बातचीत समाप्त करने के बहाने से उसने एक पुस्तक उठा ली और देखने लगा। पुस्तक मे लिखा था—

'स्वतन्त्र भारत की प्रगति की आलोचना करना तो बहुत ही सरल है, पर हरेक स्वतन्त्र नागरिक को अपने देश की बातों को गम्भीरतापूर्वक सोचना और समझना चाहिये। आज प्रश्न यह है कि देश की ग़रीबी को कैसे दूर किया जावे। यह काम केवल सरकार नहीं कर सकती। प्रजातन्त्र शासन में हर एक नागरिक की ज़िम्मेदारी हुआ करती है। एक छोटी-सी मिसाल लीजिये। देश की कुल आबादी इस समय साढ़े छत्तीस करोड़ के लगभग है। इसमें से क़रीब १८ करोड़ नर-नारी की

उम्र १५ से ६६ साल के भीतर है यानी ये बालिग़ हैं और काम करने के योग्य हैं। पर, इनमे से लगभग ६ करोड़ मर्द देहातों में रहते हैं जिनमे ६० लाख या तो काफी कमज़ोर या अपाहिज हैं। देहातों मे साढ़े आठ करोड़ स्त्रियां हैं जिनमे से बेकाम, अपाहिज या रोगी लगभग ३ करोड़ हैं यानी केवल ३३ फी सदी काम कर सकती हैं। सब मिलाकर लगभग १२ करोड़ व्यक्ति काम करने के लायक है। ६४ वर्ष की उम्र से ज्यादा या १५ वर्ष की उम्र से कम लोगों की (बूढ़े या बच्चों की) तातादृ देहातों में १३ करोड़ के क़रीब है।

'यदि १२ करोड़ काम करने वाले देहात के साल के ८ महीने के काम करने वाले महीनों में एक घन्टा तथा बरसात के ४ महीने के बेकार दिनों में २ घगटा प्रतिदिन श्रमदान करे तो साल भर मे काम करने के ६६० घण्टे बढ़ जाये और डेड़ रुपया रोज़ की मज़दूरी का हिसाब लगाकर इन ६६० घण्टों के काम का मूल्य १००० करोड़ रुपया सालाना होगा। यानी हम इतना श्रमदान करके देश को पूँजी मे १००० करोड़ रुपया एक साल में बढ़ा सकते हैं।'

प्रोफेसर ने पुस्तक हटा दी। उनको पढ़ते देखकर उनकी पत्नी भीतर चली गई थी। पढ़ना-लिखना ही उनके पति की जोविका थो। अतएव वे जीविका के बीच में बाधा नहीं पैदा करती थीं। प्रोफेसर यही चाहते थे कि वे अकेले रह जावे। वे कमरे के बाहर निकले और खिड़की के बाहर उन्होंने उर्मिला का जो पत्र अपनी जेब से निकालकर फेंका था, उसे ढूँढ़ने लगे। चबूतरे के ऊपर के कमरे की खिड़की काफ़ी ऊँची थी। नीचे मैदान में ही पत्र गिरता। उतनी रात गये पत्र कौन उठा ले जाता। पर वह पत्र वहां नही था! कौन ले गया उस पत्र को! वे खोजते-खोजते थक गय। हार कर वापस लौटे।

(७)

नीचे बहुत कुछ शोर हो रहा था। कचहरी की चहार-दीवारी के भीतर कुछ उपद्रव हो रहा था। पर एक वकील साहब, जिनके साफ-सुथरे कपड़े से यह स्पष्ट प्रकट हो गया था कि वे वकालत से ज्यादा अपने कपड़ों का ध्यान रखते हैं, एक दूसरे वकील से उलझ रहे थे, 'मैं कैसे मान लूँ कि उत्तरप्रदेश की सरकार का यह दावा सही है कि सन् १९५७-५८ के साल में उसकी द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के कारण प्रदेश मे १६,१७६ व्यक्तियों को नई नौकरियां मिली हैं।'

दूसरे वकील साहब जोर से बोल रहे थे—'न मानने वाले का कोई इलाज हमारे पास नहीं है। तब तो आप यह भी नहीं मानने को तैयार होंगे कि केन्द्रीय सरकार ने उत्तरप्रदेश मे जांच कराकर जो यह बयान निकला है कि सन् १९५५ में प्रदेश में शहरों मे काम करने लायक पुरुष स्त्रियों मे ७ फी सदी बेकार थे और देहातों में ११ फी सदी। अब पंचवर्षीय योजना काफी विकास हो जाने के कारण शहरों मे दो फी सदी तथा देहातों में ३ फी सदी बेकार हैं।'

'मैं नहीं मानता' कहते हुये सफेद-पोश वकील शोरगुल देखने के लिये बार लाइब्रेरी की खिड़की पर आ पहुँचे। हल्ला इतना हो रहा था कि सभी अदालतों ने अपना काम स्थगित कर दिया था।. नीचे कोई जोर से चिल्ला रहा था—वकील साहब को गहरी चोट आ गयी है।'

हजारों आदमी अदालत के अहाते के थे पर कोई ऐसा वीर नहीं था कि वकील साहब की रक्षा के लिये दौड़ पड़ता। दो-तीन वकील तो जरूर उधर लपक पड़े थे पर अधिकांश या तो दूर खड़े तमाशा देख रहे थे या अहाते के दूसरे दरवाजे से भाग रहे थे। विचारपति लोग अपने विचारों में ही मग्न बैठे थे।

पुलिस अदालत की रक्षा में सतर्क हो गयी थी। बाहर की परेशानी से परेशान होने का उसे अवकाश नहीं था या सरकार की विद्यार्थियों के प्रति 'छूट' की नीति के कारण वह तमाशाई बनी हुई थी। खिड़की पर खड़े वक़ील साहब ने केवल इतना ही कहा—

'करगह छोड़ तमाशे जाय।
नाहक चोट जुलाहा खाय॥'

और वे आराम से कुर्सी पर बैठकर, दोनों टांगें मेज़ पर रखकर सिगरेट जलाने लगे।

नीचे विधुशेखर जी की हालत चिन्ताजनक हो गई थी। जब हड़ताली विद्यार्थी कचहरी के अहाते मे घुसकर हलवाई की दूकान लूटने लगे तथा गरीब खोंचे वालों का सामान उलटने-लूटने लगे तथा फल वाले का सब सामान इधर-उधर हो गया तो विधुशेखर दूर से, खिड़की से यह दृश्य न देख सके। वे लपककर नीचे चले आये और भीड़ में–विद्यार्थियों की भीड़ में घुसकर उन उपद्रवियों को डाँटने लगे। वे चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे, क्या तुमको शर्म नहीं आती। माता-पिता का रुपया बर्बाद हो रहा है तुम्हारी पढ़ाई पर। इन गरीब दूकानदारों को लूटने से तुम्हारा अधिकार मिलेगा? मेरे हाथों मे हुकूमत होती तो तुम लोगों को गोली मार देता।'

विद्यार्थी अर्थात् उपद्रवी विद्यार्थी ऐसी फटकार या नसीहत के आदी नही थे। पहले तो एक मूर्ख के इतने साहस पर उनको हँसी आई। वे विधुशेखर को चिढ़ाने लगे। शोर करके उनकी आवाज़ को डुबा देना चाहते थे। जब वे चुप न हुए तो एक ने उन पर लूटे हुये फलों मे से दो फल तानकर मारे। विधुशेखर का क्रोध बढ़ गया। वे उत्तेजित होकर उबल पड़े—

'मारना चाहते हो। मारो। मैं भी किसी विद्यार्थी का बाप हूँ। मेरा लड़का ऐसा करता तो जूतों से ख़बर लेता।'

और इतना काफी था विद्यार्थियों का उपद्रव तीव्र कर देने के लिये। किसने विधुशेखर पर पहला वार किया यह तो नहीं कहा जा सकता। कुछ ही क्षणों में उनके सर से खून बहने लगा। शायद किसी जूते की नाल लगी होगी। जूते ही पड़ रहे थे, चारों ओर से। ऐसी दशा मे चेतना जाते कितनी देर लगती है। निर्जीव या अचेत या असहाय या दुर्बल पर हाथ चलाना विद्यार्थी खूब जानता है। वकील साहब के तीन चार साथी उनकी रक्षा के लिए दौड़ पड़े थे पर वे बहस के सूरमा थे, मार-पीट के नहीं। मौक़ा अनुकूल न देखकर वे हट गये। हां, उनका एक पुराना मुवक्किल जिसे लोग गुण्डा कहते थे, वहां आ पहुँचा। वह कूद पड़ा उस भीड़ मे और फिर तो उसके लात घूँसे ने छोंकरों को छटी का दूध याद दिलाना शुरू किया।

उपद्रवी विद्यार्थी तभी तक उपद्रव करता है जब तक उसे बल या शक्ति का सामना नहीं करना पड़ता। अब विद्यार्थी पिटने लगे तो शोर और बढ़ा। हड़ताली जलूस के नेताओं तक समाचार पहुँच गया था। हड़तालियों की प्रथम श्रेणी में लड़कियां थीं। उनका नेतृत्व उर्मिला कर रही थी। स्त्रियों का कवच पहन कर पुरुष विद्यार्थी जलूस ले जा रहे थे। आत्म-रक्षा का यही श्रेष्ठ उपाय था। विद्यार्थी संघ का अध्यक्ष होने के नाते परेश सबसे आगे था। लड़कियों की पंक्ति के पहिले।

उर्मिला के साथ चलने, बोलने, हँसने का इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था। इस समय कोई उसकी ओर देखकर कुछ कह नहीं सकता था। कोई आपत्ति नहीं कर सकता था। किसी न किसी बहाने, चाहे पंक्ति को ठीक कराने का आदेश देने के लिये ही क्यों न हो, वह उर्मिला का हाथ पकड़

लेता और उसकी हथेली को अपनी उंगलियों से गुदगुदा देता। उर्मिला भी अपनी बड़ी-बड़ी आंखों मे प्यार का सन्देश भरे उसके मुख पर अमृत बिखेर देती थी।

परेश मस्त हो रहा था। अपने अभिनय की सफलता पर। हड़ताल तथा जलूस का प्रवाह देखकर। वह प्रसन्न था कि उर्मिला को उसके पिता के यहां से जाने से रोका जा सका। वह निश्चिन्त था कि जब उर्मिला यहां तक उसका साथ दे रही है तो उसकी बनी रहेगी।

उर्मिला भी परेश की तरह से चाहती थी कि जुलूस अनन्त काल तक चलता रहे। पिता-माता की लाड़ली तथा जरा देर मे थक जाने वाली बेटी के पैरों मे इस समय न जाने कहां का बल आ गया है। आकांक्षा अंधा ही नहीं बना देती है। प्रबल आकांक्षा बल देती है। स्फूर्ति देती है। मानव की शारीरिक दुर्बलता उसके वातावरण पर निर्भर करती है। बलवान समय होता है। बलवान घटना होती है। पुरुष नही। परेश को नेतागिरी का स्वाद मिल रहा था। उसका अहंभाव सन्तुष्ट हो रहा था। छोटा मन ऐसे ही अवसरों से बलवान बनता है। उर्मिला परेश के इस गौरव से हार्दिक सुख प्राप्त कर रही थी। उसे ऐसा लगता था कि इस गौरव से परेश का शरीर और बलिष्ठ होता जा रहा है।

उधर, "गुण्डे" की मार से विद्यार्थी छँटने लगे। भागने लगे। उनकी पंक्ति मे दरार पड़ते देखकर पुलिस वालों का साहस बढ़ा। वे उधर दौड़ पड़े। बड़े दारोगा जी तो 'जुलूस के नियंत्रण के लिये" सबसे आगे थे। परेश ने उनको पहचान लिया था। तीन वर्ष वे भी उसी विद्यालय के छात्र थे और हड़ताल और जुलूसों का नेतृत्व कर चुके थे। दोनों एक दूसरे को

पहचान गये पर किसी ने यह ज़ाहिर नहीं होने दिया। दोनों ने मौन भाषा मे बाते कर ली। परेश निश्चिन्त था।

पुलिस ने सब से पहला काम यह किया कि उस "गुण्डे" को पकड़ लिया और दो चार हाथ उसे लगाये। परेश के पास समाचार पहुँचा कि पुलिस लाठीचार्ज कर रही है और विद्यार्थियों को पीट रही है। पहले तो वह डरा। पर उर्मिला के सामने वह डर नहीं सकता था। बड़े दारोग़ा जी और परेश दोंनों साथ-साथ पीछे भागे। परेश घटनास्थल पर पहुँच गया। विधुशेखर को रक्त से लथपथ देखकर वह चीख़ कर उनसे लिपट गया—

'अरे पिता जी'—विधुशेखर परेश के पिता थे।

(८)

जलूस तितर-बितर हो गया। दूसरे दिन समाचार पत्रों में उसका अच्छा ब्यौरा निकला। पुलिस ने इतनी बेरहमी से निरपराध तथा शान्त विद्यार्थियों पर लाठी चलायी कि विद्यार्थियों की रक्षा करने के प्रयत्न मे नगर के एक प्रसिद्ध वकील विधुशेखर बुरी तरह से घायल हो गये हैं और अस्पताल मे अचेत पड़े हैं। अभी तक उनको होश नहीं आया। गुन्डे भी उपद्रव में शामिल होकर लड़कों को मार रहे थे। एक नामी गुण्डा पकड़ा गया है।—'यह बिचारा वही निरपराध मुवक्किल था जो वकील साहब की रक्षा मे भीड़ में घुस पड़ा था।

समाचार पत्रों की ऐसी रिपोर्ट से जनता के मन मे पुलिस के प्रति घृणा तथा 'बिचारे लड़कों' के प्रति सहानुभूति का उमड़ आना स्वाभाविक था। लाठी चार्ज के विरोध में शहर मे हड़ताल हो गई।

उर्मिला ने अपने पिता को पत्र लिख दिया था कि कालेज का, फिर शहर का वातावरण ऐसा नहीं है कि वह होस्टल से

अलग रह सके। न जाने मे क्या नई बाते पैदा हों। वातावरण शान्त होते ही वह तुरन्त घर आ जायेगी।

पर, उसकी इच्छा के विपरीत वातावरण यकायक शान्त हो गया। यदि समाचार पत्र उसे अनायास अशान्त रखने के लिये विद्यार्थियों के जलूस का सही वर्णन करते तो दूसरे दिन शहर में लोग भूल भी जाते कि कल हुआ क्या था। दो एक व्यक्तियों ने जलूस तथा उपद्रव अपनी आंखों देखा था। उन्होंने स्थानीय समाचार पत्र को टेलीफोन करके पूछा भी कि इतना ग़लत समाचार कैसे निकल गया। पर जब सम्पादक जी को पता चला कि झगड़े के डर से स्वयं सम्वाददाता घटना-स्थल पर मौजूद नहीं थे। केवल मन से सम्वाद बना दिया था तो वे दुःखी तो हुये पर यह सोचकर कि समाचार का खंडन छापने से उनके अखबार की मर्यादा घटेगी, वे चुप लगा गये। सरकारी बयान समाचार पत्र के सबसे कोने वाले स्थान मे जरूर छाप दिया था पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। लोगों ने कहा—'सरकार तो अपने मन की कहेगी।'

पवित्रता तथा सच्चरित्रता मे स्त्री-पुरुषों से कहीं आगे है। संयम मे उसकी तुलना पुरुष नहीं कर सकता। वह मायामयी है पर उसका मन बड़ा बलवान होता है। किन्तु एक बार यदि वह अपने पथ से भ्रष्ट होती है तो उससे सभलते भी नहीं बनता। उसका पतन भयावह होता है। उसके पतन की सीमा कठिन है। उर्मिला बड़ी भोली, बड़ी सीधी लड़की थी। उसने जीवन का खिलवाड़ समझा नहीं था। अनायास वह कांटे से उलझ गई। अब, वह उन्मत्त है। उन्माद मे है। उसे कौन रोके!

परेश के नेत्रों के सामने अन्धेरा था। वह कचहरी के उसी मैदान मे अपने अधमरे पिता के ऊपर झुका हुआ था। उसके नेत्रों से टपटप आंसू गिर रहे थे। विधुशेखर के मुख का एक

कोना गाज और रक्त लिये गीला हो रहा था। परेश को अपने पिता का मुख साफ नही दिखाई पड़ रहा था।

उर्मिला भी भागती हुई वहां आ पहुँची थी। इस दुर्घटना से वह भी हतबुद्धि हो रही थी। नारी सुलभ दयालुता तथा ममता से उसका कंठ कांटों से भर गया था। आवेग मे परेश की पीठ पर हाथ रखकर वह सहलाने लगी और तब यकायक उसे ऐसा लगा कि इस विपत्ति के समय भी उसे ऐसा करना, इतनी आत्मीयता से परेश से मिलना अच्छा लग रहा है।

पीठ पर हाथ कुछ ज्यादा हिला होगा। परेश का ध्यान उचटा और उसने मुड़कर देखा—'उर्मिला'—और यकायक उर्मिला, फिर अपने पिता दोनों का चेहरा उसने पलक झपते एक साथ देख लिया। उसके मन में दौड़ गया—इस सुन्दर मुख के कारण ही मेरे पिता का चेहरा ऐसा हो रहा है।

देखने वाले कुछ न समझे और परेश ने उर्मिला का हाथ झटक दिया। वह उठकर खड़ा हो गया। ऐम्बुलैंस गाड़ी आ गई थी। अपने विचारों मे डूबा हुआ वह अपने पिता को लिये अस्पताल पहुँचा। शेष सभी वकील झगड़ा फसाद, गवाही, पुलिस की छान-बीन आदि से बचने के लिये लापता हो गये। बार लाइब्रेरी मे देश की समस्या पर गर्भ बहस करने वाले वकीलों ने घटनास्थल तक आने का भी कष्ट नहीं किया। जज, मुन्सिफ वग़ैर इसे फौजदारी का मामला समझकर वहां तक जाना मुनासिब नहीं समझकर घर चले गये। दो-तीन पुराने, बूढ़े वक़ीलों ने साथ न छोड़ा। वे अस्पताल तक पहुँचे।

गाड़ी से पिता को उतारते-उतारते परेश ने देखा कि उसकी माता पागल की तरह दौड़ी आ रही है। लोगों के रोकते रोकते वह अपने पति के पैरों से चिपट गई थी। मां का

चीत्कार परेश का कलेजा फाड़े डालता था। वह अब अपने को न सम्भाल सका। पिता अस्पताल के भीतर पहुँच भी न पाये थे कि परेश अपनी मां से चिपटकर अपना सर पीटते हुये रोने लगा—'अम्मा, बाबू जी को बचालो। यह सब मेरी भूल है। बचालो अम्मा।'

मां अपनी ही वेदना मे विक्षिप्त थी। परेश की पुकार कोई कैसे सुन सकता था। सबका ध्यान इस समय अचेत, वेदना से विक्षिप्त वक़ील साहब की ओर था।

अस्पताल के लोग भी मनुष्य ही है। उनका दिल भी पसीजता है। नित्य पीड़ा तथा शारीरिक यातना देखते-देखते वे कठोर हृदय हो जाते हैं, पर मानव का दुःख दर्द उन्हें भी सताता ही है। फिर, विधुशेखर अपनी ईमानदारी, सच्चाई तथा नेकनीयती के लिये शहर भर मे प्रसिद्ध थे। उनको कभी किसी ने किसी की निन्दा करते या कड़वी आलोचना करते नहीं सुना था। वे आजकल के फैशन के आदमी नही थे।

अभी उस दिन की बात है कि एक आनबान के आदमी अस्पताल मे डाक्टर से उलझ रहे थे कि उनको वे बहुत मँहगी और क़ीमती दवाये तथा रूइयां अस्पताल से क्यों नहीं मुफ्त दी जातीं। डाक्टर साहब उनको समझाने की चेष्टा कर रहे थे कि 'भाई, सरकारी हो या ग़ैर सरकारी, अस्पताल ग़रीबों के लिये होता है। मँहगी दवायें आप ख़रीद सकते हैं, ले लीजिये। पेटेन्ट दवाये अस्पतालों मे इस तरह नहीं बांटी जा सकतीं।' पर वे बिगड़ते-बिगड़ते यहां तक कह बैठे—'सब अस्पतालों मे चोरी होती है। दवा बिकती है।'

विधुशेखर वहीं बैठे थे। एक मित्र का हाल पूछने गये थे। उनसे न रहा गया। वे उबल पड़े—'जी हां, तो आप भी चोरी करने आये हैं। करदाता के पैसे से अस्पताल चलता है। वह

इतनी मँहगीं दवाइयां नहीं बांट सकता। मजदूरों का स्वास्थ्य का बीमा होता है। उनको सरकार दे सकती है।'

'हम चाहे तपेदिक में मर जायें। हमे दवा नहीं मिलेगी!' बिगड़े दिल महाशय बोले।

'संसार मे इस समय लगभग ५ करोड़ आदमियों को तपेदिक है यानी संसार की आबादी के चालीसवे हिस्से को क्षयी है। तो क्या सबको दवा बांटी जाये!'

'दवा दीजियेगा तो रोग समाप्त होगा। सरकार का ही लाभ होगा। देखिये इङ्गलैण्ड में मुफ्त दवा मिलती है। वहां के लोग कितने स्वस्थ है।' महाशय बोले।

'कौन कहता है।' विधुशेखर ने उठते हुये कहा। 'कुछ पढ़ते है नही, बहस करते हैं। मैंने कल पढ़ा था कि सन् १९४९ मे वहां ६०,४४९ टांमेल (गले की घण्टी) का रोग। सन् १९५१ मे १,००,८२१ मरे। अब बोलिये।'

वे महाशय बड़बड़ाते,हुये चले गये। न विधुशेखर ने समझा, न डाक्टर ने कि हम दोनों तीन दिन बाद किसी दूसरी परिस्थिति मे यहां मिलेगे। डाक्टर ने अपने चिरपरिचित मित्र को ऐसी दशा मे देखा।

समूचा अस्पताल एक मौत से लड़ने का प्रबन्ध करने लगा।

(६)

मनोहर जब अपने कमरे में आकर टोपी उतार कर कुर्ता उतारने की तैयारी करने लगा तो उस टोपी से एक आधा मुड़ा-सा पत्र गिर पडा। उसे बड़ा अचम्भा हुआ। सर के ऊपर, टोपी पर कोई पत्र कैसे रख देगा। उसका एक मित्र बीमार था। वह अपने मित्र की सेवा के लिये गया था। परेश का कमरा साफ करने के बाद वहीं चला गया था।

सहपाठियों की सेवा सहायता करने का उसे 'रोग' था। धनी तथा सम्भ्रान्त परिवार में जन्म लेने पर भी उसमे धन या उच्चकुल की शान छू तक नहीं गयी थी। कमरे से लेकर शरीर की सफाई का उसे बड़ा शौक था। वह प्राय: अपने मित्रों से कहा करता था कि आप लोग यदि अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहते हैं तो पहले अपने जूते पर ध्यान दीजिये। सड़क का सब मैला कुचैला भरे उसे पूरे कमरे में टहलाने से क्या बीमारी नहीं पैदा होती। यदि जूते को कमरे के कोने मे उतार दिया जाय तो क्या हर्ज है!

वह इससे भी आगे बढ़ जाता। कहने लगता कि क्या पश्चिमी देशों की नकल जूते से ही शुरू होगी। उनके यहां की आबोहवा ऐसी है कि सड़के अधिक साफ रहती हैं और उन पर कीटाणु इतने नहीं रहते जितनी गर्म आबोहवा मे। मनोहर अपनी बनियान व लंगोट भी स्वय साफ कर लेता था। उसका कहना था कि शरीर को स्पर्श करने वाले कपड़े खुद धोने चाहिये।

पर, उसकी समझ मे नहीं आ रहा था कि यह पत्र उसके सर पर रखा हुआ यहां तक कैसे चला आया। ऊपर की लिखावट पहचानी सो लगी। शायद इसी कद और लिखावट का पत्र उसे परेश के कमरे मे पड़ा हुआ मिला था और उसने उसे सयत्न मेज़ पर रख दिया था। दूसरे का पत्र पढ़ना वह असभ्यता तथा शिष्टता समझता था। पर अब यह पत्र हाथ धोकर उसके पीछे पड़ा है। फिर उसके सामने आ गया।

यह कल्पना भी वह कैसे करता कि होस्टल (छात्रावास) के जिस भाग से निकलकर वह मन में कुछ सोचता चला जा रहा था, वहां प्रोफेसर साहब के कमरे में एक तूफान सा मचा हुआ था और ठीक जिस समय वह उनके कमरे की खिड़की

के नीचे से गुज़र रहा था, प्रोफेसर साहब ने हाथ बाहर निकाल कर उर्मिला का पत्र फेंक दिया था। भाग्य की बात वह पत्र मनोहर की गाधी टोपी के बीच मे बैठ गया और सुरक्षित बैठा रहा।

खींचतान मे पत्र का चौकोरपन तिकोना बन गया था। नीचे की परत सामने आ गई थी जिस पर पत्र लिखने वाले का हस्ताक्षर था—'उर्मिला'। मनोहर चौक उठा। उर्मिला— नहीं बड़ी सीधी, सादी लड़की। स्वयं सरल स्वभाव का होने के कारण वह किसी लड़की की चञ्चलता को भी समझ नहीं पाता था। पुस्तकों का कीड़ा होने के कारण उसे बाहरी बातों का पता भी नहीं चल पाता था।

उर्मिला को वह प्राय. देखता था और उसके मन मे उस सुन्दर अबोधन्सी लड़की के प्रति अनायास आकर्षण भी होता था। जब लड़की इसीलिये शृङ्गार करती हो कि वह दूसरों को आकर्षित करती रहे तो फिर वह इसकी परीक्षा भी मन ही मन करती रहती है कि वह कहां तक सफल रही। मन मे बिना पाप लाये भी शृङ्गार करके घूमने वाली युवतियां बराबर इम्तहान लेती चलती है। उर्मिला ने मनोहर का आकर्षण पहचान लिया था पर उसके अस्पस्त नेत्रों से यह भी नहीं छिपा रहा कि मनोहर स्वयं अपने मन के आकर्षण को नही समझ पा रहा है।

मनोहर को उर्मिला का हस्ताक्षर अच्छा लगा। अब वह सोचने लगा कि उस पत्र का क्या करे। निस्सन्देह उस पत्र का बड़ा महत्व है। वह परेश के कमरे से घूमता हुआ उसके सर पर पहुॅच चुका था। उस पत्र के साथ मनोहर का भाग्य जैसे बध गया हो। परेश के काम का हो सकता है पर उसके जैसा चतुर युवक उस पत्र को यों ही न फेंक देता। उर्मिला ने

लेखा है कि—प्रेम से, क्रोध से, काम से, बेकाम से कौन जाने। यदि पत्र पढ़ लिया जावे तो सभी बातें हल हो जावें।

कुछ क्षण के लिये मनोहर का मन डोल गया। यकायक वह घबड़ा उठा। उसके मन ने पूछा—ये सीधे आदमी। यदि उर्मिला का हस्ताक्षर तुम्हारे मन में इतना विकार पैदा कर सकता है तो यदि उर्मिला यहां इकेले तुम्हारे पास खड़ी होती तो

मनोहर बेचैन हो गया। कमरे मे टहलने लगा। उसने बड़े यत्न से पत्र को जेब में रख लिया। उसे ऐसा लगा जैसे कोई बड़ी मूल्यवान अमानत है जिसे वह सम्भाले हुए है। सुबह वह उर्मिला से मिलेगा। साहस करके उसका पत्र वापस कर देगा।

किन्तु, कालेज खुलते-खुलते उसने देखा कि विद्यालय की हवा मे बड़ी गर्मी आ गई है। कुछ देर वह समझ न सका कि क्या हो रहा है। वह समाज-शास्त्र की कक्षा मे बैठा हुआ था, अध्यापक के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके दो चार साथी और भी बैठे हुये थे। उसने देखा कि प्रोफेसर कक्षा में नहीं आये—कुछ विद्यार्थी घुस आये और मनोहर और उसके साथियों को धक्का मार कर बाहर खदेड़ ले गये। मनोहर को ऐसा लगा कि दूर से परेश कुछ विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर रहा है कि मनोहर को दो चार धक्के और लगाये जाये।

भीड़ में उर्मिला भी थी। परेश के पास ही खड़ी थी। मनोहर को स्मरण था कि उसे पत्र वापस करना है पर उर्मिला तो इस समय घोड़ों पर कूद रही थी। परेश के पास जाने का मनोहर को साहस नहीं हो रहा था। उसे समझ में आ गया कि पत्र मे क्या होगा। अवश्य उर्मिला ने परेश को पत्र द्वारा सूचित किया होगा कि आज हड़ताल किस ढङ्ग से करनी होगी। परेश ने पत्र को लापरवाही से कहीं फेक दिया होगा।

शायद हवा में उड़कर वह किसी प्रकार उसकी टोपी पर आ बैठा। न जाने क्यों, पत्र का यह विषय मनोहर को बुरा नहीं लगा। वह जो कुछ पाप की बात सोच रहा था, उसका निराकरण सन्तोष की बात थी ही। मनोहर विद्यार्थियों की भीड़ से अपने को खींचकर पुस्तकालय की ओर चला। वहां भी ताला बन्द था अब वह छात्रावास की ओर लौटा।

उसने देखा कि मैदान मे मनोविज्ञान के प्रोफेसर साहब खड़े हैं और बारबार अपनी खिड़की की ओर देख रहे हैं। मनोहर को देखकर वे सकपका-से गये। पूछने लगे, 'कहो क्या हाल है।'

मनोहर ने देखा कि उनका चेहरा चिन्ता या घबड़ाहट से भराया हुआ है। उसने पूछा—'क्या बात है प्रोफेसर साहब ! आप ऊपर क्या देख रहे हैं।'

प्रोफेसर साहब के मुख से यकायक निकल गया—'अरे भाई, कल रात को एक महत्वपूर्ण नोट तैयार किया था। लड़कों को पढ़ाना था। नौकर ने खिड़की से उसे नीचे फेक दिया। मै यहीं तलाश करके थक गया। देख रहा था कि उतनी दूरी से गिरने से काग़ज़ कितने दूर उड़ सकता है।'

निश्चल मनोहर अपने अध्यापक की समस्या हल करने के लिए कुछ सोचने के बाद गम्भीतापूर्वक बोला—'दिन का उड़ा हुआ काग़ज़ ज्यादा दूर तक चला जाता है। रात को हवा में नमी रहती है। भारीपन रहता है। यह दिन की घटना है या रात की।'

'रात की'—प्रोफेसर साहब को कुछ सहारा मिला। वे और अधिक जांच करने के विचार से कह बैठे—'शायद आधी रात के लगभग हो।'

मनोहर के दिल मे जैसे एक धक्का लगा। उसी समय वह इसी खिड़की के नीचे से गुजरा होगा। विचारों मे गोता लगाते हुये वह इतना ही कह सका—'तब तो सीधे नीचे गिरा होगा—'

और सीधे अपने कमरे की ओर लम्बे कदम बढ़ गया।

(१०)

उर्मिला के सुन्दर नेत्र रातभर जागने से लाल हो रहे थे। आखिर सोचते-रोते थक कर पौ फटते फटते उसे नीद आ ही गई। देर मे सोकर उठने की उसकी साधारण आदत थी। अपनी उम्र की बहुत सी लड़कियों की तरह से वह कालेज जाते समय अपने गले के ऊपर के हिस्से की सफाई और सजावट मे थोड़ा समय अवश्य लगाती थी। और इतना काम निपटाते निपटाते कालेज जाने का समय हो जाता था।

देर तक सोकर उठने वालों को देर तक खाट पर पड़े पड़े सोचने की भी आदत होती है और उस समय उनके मन मे तरह-तरह के विचार और विकार उठते रहते है। देर तक सोने वाले को उषा काल के समय सबसे गहरी नींद भी आती है। उर्मिला को नींद आई भी लेकिन जम न सकी कि उसने अध-खुली आंखों से देखा कि उनके पिता जी सामने खड़े हैं।

कल शाम होते जब वह जलूस मे से लौटी थी तो उसका चेहरा लाल हो रहा था। दिल के भीतर की आग की ललाई चेहरे पर फैल गई थी। दिन भर का सब दृश्य उसके नेत्रों के सामने नाच रहा था। वह सोच नही पाती थी कि उतना सुनहला और लुभावना दिन सूर्य के प्रकाश के समान ही कितना निखरता और बढ़िया होता चला गया और फिर संध्या की धूमिल छाया की तरह धुन्धला बन कर समाप्त हो गया। कमजोर दिल के लोगों की तरह मुँह को भी लिहाफ के भीतर लपेट कर सोने

वालों की तरह वह भी संसार से मुँह छिपा कर सोने का प्रयास करने लगी थी।

पर परेश का शोक और फिर क्रोध से भरा चेहरा उसे जगाये रखता था। सोने नहीं देता था। परेश ने जिस तिरस्कार के साथ उसका हाथ झटक दिया था, उसका दिल तोड़ दिया था, उसका कारण वह नहीं समझ सकी। अबोध तथा कच्ची उम्र की लड़की, कालेज के दूषित वातावरण में अपना हृदय ही तो खो चुकी थी, यौवन अल्हड़पन अनुभवहीनता तथा बचपन का भोलापन दोनों का सङ्गम उसकी जैसी उम्र की लड़कियों मे तो स्वाभाविक था। तब वह कैसे समझे कि परेश इतना कठोर क्यों हो गया! निस्सन्देह उसके पिता को गहरी चोटें लगी थीं। वे बेहोश पड़े थे। पर इसमें उर्मिला का क्या दोष था। परेश उससे प्रेम करता था पर पिता का घायल चेहरा देखकर उर्मिला का सुन्दर मुख उसे बुरा क्यों लगा! जिन हाथों को स्पर्श करने के लिये वह लालायित रहता था, उनका इतना अनादर क्यों कर हो गया! लिहाफ के भीतर ही अन्धेरे मे वह अपना मुलायम हाथ देखने की चेष्टा करने लगी। और यह सब सोचते सोचते जब आंखे सचमुच बन्द हुई तो पिता जी कैसे आ पहुँचे! क्या सपना तो नहीं देख रही है। पर, पिता जी उसे हिला कर जगा रहे थे—'उठो बेटी। ८ बज गये। क्या होस्टल मे इतनी देर तक सोते हैं।'

उर्मिला उठ बैठी। उसके पिता राधारमण बाबू एक पेंशन-याफ्ता सरकारी कर्मचारी थे। एक बड़े नगर में पोस्टमास्टर के पद पर रह कर 'रिटायर" हुये थे—अवकाश प्राप्त किया था। दस वर्ष से पैशन पा रहे हैं। उर्मिला उनके बुढ़ापे की एक मात्र सन्तान थी। वे तथा उनकी पत्नी दोनों उसे बड़ा प्यार करते थे। पेन्शन पाने वाले अधिकांश सरकारी कर्मचारियों की तरह

उनका भी चौबीस घण्टे का दिन एक के बाद दूसरा बेकाम बीत जाता था। जिसने जवानी में धर्म की ओर ध्यान नहीं दिया वह बुढ़ापे मे केवल जी बहलाने के लिये उधर ध्यान देता है। खाना, सोना, मुहल्ले भर की पंचायतों मे दखल देना तथा जवानों का संग साथ न मिलने पर बकवासी बूढ़ों की तलाश करना। कुछ कविता करने का शौक़ जरूर पैदा हो गया था पर बूढ़ा यदि नया कवि बनता है तो जवानी की अपनी अतृप्त वासनाओं को कविता मे उड़ेल दिया करता है। कुछ न मिला तो अपने अनियन्त्रित विचारों को श्री राधा-कृष्ण पर ढाल देना बड़ा सरल है।

राधारमण बाबू की कविताओं को सुनकर उर्मिला की माता 'छि: छि:' कर देती थीं एकाध बार तो कह बैठी थीं—'बुढ़ापे मे जवानी सूझी है।'

राधारमण सद्-गृहस्थ थे। भले आदमी थे। किसी के भले-बुरे में नहीं थे, सबके साथ मिलते और हरएक का झगड़ा अपने ऊपर मोल ले लेते थे। वृद्धावस्था मे युवावस्था के सुखद गुदगुदाने वाली स्मृतियां साकार आकर खड़ी हो जाती हैं। युवावस्था में अनायास साथी और मित्र मिलते हैं। बुढ़ापे मे तलाश करने पर साथी मिलता है और जब मिलता है तो न जाने कौन-सा समय उसकी विदाई का हो! कब उसकी पुकार स्वर्ग से हो जाय। इस अनिश्चितता के कारण वृद्धों की मित्रता आंधी में पेड़ के नीचे बैठे लोगों की मित्रता के समान अधिक गहरी और गाढ़ी होती है।

राधारमण के कई मित्र थे। उनमें विधुशेखर भी थे। यह आवश्यक नहीं है कि पति की मित्रता पत्नियों तक भी निभे। विधुशेखर की पत्नी पचास तक आ पहुँची थीं पर अपने रूप और सौन्दर्य को इतनी दूर तक काफ़ी बचा लायी थी।

राधारमण की पत्नी पचास तक ही सत्तर वर्ष वाली बन गई थीं। उन्हें विधु बाबू की पत्नी को देखकर अनायास ईर्ष्या होती थी और वह ईर्ष्या और भी बढ़ जाती जब राधारमण उनको 'भाभी' कह कर पुकारते कुछ छेड़ देते। कुछ सुन लेते। उर्मिला की मां मन ही मन कुढ़ जाती थीं। वे विधु की पत्नी से चिढ़ती थीं इसलिये उनका बच्चा परेश, परेश की तीन बहनें, सभी उसे अच्छी नहीं लगती थीं।

राधारमण ने विद्यार्थियों की हड़ताल, उपद्रव, विधु बाबू का घायल होकर अस्पताल जाना यह सब तो सुना ही, पर सबसे अधिक पुलिस द्वारा लाठी चार्ज के समाचार से वह उद्विग्न हो उठे। पता नहीं कि उनकी लड़की कैसे है। वे भागे हुये कालेज आये।

'चलो जल्दी उठो। घर चलो। तुम्हारी माता बहुत परेशान हैं।' राधारमण ने आदेश दिया।

जिस घर से बचने के लिए, जिस प्रश्नोत्तर तथा छानबीन से पीछा छुड़ाने के लिये इतना सब नाटक किया गया, क्या उसका यही अन्त होगा। उर्मिला ऐसी घबड़ा गई थी कि उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। नींद तो भाग गई, बुद्धि भी साथ लेती गई।

जल्दी से उसे एक ही सहारा सूझा—छात्रावास के सुपरिन्टेन्डैन्ट यानी वार्डन—अभिभावक, मनोविज्ञान के प्रोफेसर साहब का। वह उनसे घृणा करती थी, उनसे दूर रहना चाहती थी पर इस अवसर पर मरता क्या न करता। उसने पिता के सामने नक़ली प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'हां पिताजी, मुझे लिवा चलिये। पर, ज़रा ठहर जाइये। मैं वार्डन साहब से आज्ञा प्राप्त कर लूँ।'

पिता ने भी समझा कि बात कायदे की है। उनको वहीं बिठाकर वह प्रोफेसर के कमरे की ओर भागी। पत्नी के कई बार डांटने पर वे खाट पर उठ बैठे थे। बिना मुँह धोये, रात भर की गन्दी हवा तथा थूक से भरे मुँह मे चाय का गरम पानी डाल रहे थे।

नौकर ने जाकर कहा—'उर्मिला आपसे मिलना चाहती है।'

'उर्मिला!'—वे घबड़ाकर बोले। देवी जी रात को उर्मिला का नाम सुन चुकी थीं। वे बिना कुछ बोले ही पति के साथ कमरे में चली आईं। देवी जी की उपस्थिति के लिये न तो प्रोफेसर तैयार थे न उर्मिला। लडकी कुछ और घबड़ा गई। उसने परेशानी में गिड़गिडाते हुये कहा—'पिता जी मुझे घर लिवा जाने के लिये आये है।'

प्रोफेसर का मुँह कुछ कहने के लिए खुला ही था कि देवीजी बोल उठीं—'हां ज़रूर जाओ। जाना ही चाहिये।'

अब कहने के लिए क्या बचा था। पर, कुछ तो इस अवसर से लाभ उठाना ही था। वे कठोर चेहरा बनाकर बोले—'तुमने परेश को जो नोट लिखा था, उसने मुझे दिखा दिया है। खबरदार ऐसा न हो। मैं तुम्हारे पिता से कह दूँगा।'

उर्मिला के पैरों तले से मिट्टी खिसक गई।

(११)

रोते रोते परेश की आंखें सूज आई थीं। कलपते कलपते उसकी माता का गला भर आया था। उसके कण्ठ से आवाज़ भी नहीं निकल पाती थी। अस्पताल के कर्मचारी बनावटी क्रोध से इन दोनों को बराबर डांट रहे थे। पर, इनका दुःख देखकर उनका भी जी भर आता था।

ऐसा लगा जैसे समूचा अस्पताल विधु बाबू के साथ मृत्यु से युद्ध कर रहा हो। अनहोनी की कोई नहीं कह सकता। कल दोपहर तक जो स्वस्थ तथा प्रसन्न था, इस समय कितना बेबस और लाचार है। यदि अचेत न होता तो उसके शरीर में जो दस-बारह टांके लगे हैं तथा गाल और खोपड़े का कई हिस्सा अब भी खून उगल रहा है, वह कितनी पीड़ा देता। विधु बाबू को होश नहीं आ रहा था। समझा कि कहीं दिमाग़ पर घाव ने असर न किया हो, तब उनका बचना कठिन होगा।

आवश्यकता हुई उनके शरीर मे बाहरी रक्त चढ़ाने की। पत्नी ने पहले हाथ बढ़ाया। वह यदि अपना प्राण देकर भी पति को बचा सकती तो दे देती। हिन्दू स्त्री भावना से कुछ नहीं मांगती—केवल सुहाग चाहती है। परेश ने अपना हाथ बढ़ाया—वह इस समय संसार में कुछ नहीं चाहता। केवल अपना पिता चाहता है। पर, परीक्षा लेने पर दोनों का रक्त उस श्रेणी का नहीं निकला जिस श्रेणी का चाहिये था। डाक्टर लोग इधर उधर देखने लगे। उनके सामने यकायक एक नया हाथ आ गया।

मनोहर का रक्त ठीक निकला। सहर्ष उसने अनुमति दी कि जितना चाहे ले लो। वह अपने सहपाठी का पिता का हाल पूछने अस्पताल आया था उसने सुना कि रक्त चाहिये। वह अपना हाथ बढ़ाकर अपनी सेवा से बड़े आत्म-सुख का अनुभव कर रहा था।

रक्त चढ़ाये दो घन्टे और बीते। तीसरा प्रहर होते होते विधु बाबू में कुछ प्राण-संचार हुआ। कल से बन्द नेत्र जैसे शान्त रहते थक गये हों। कुछ हिले से—फिर खुले से! शनैः शनैः उनमें चेतना आ गई। बड़े धीरे से उन्होंने कहा, हाय राम।'

इस "राम" ने सबके चेहरे पर जोवन बिखेर दिया। परेश का सिसकना, उसकी माता का कलपना यकायक थम गया।

करुणा भरी दृष्टि से सब उन नेत्रों की ओर देखने लगे। डाक्टर तथा नर्स दूसरा इन्जेक्शन देने की तैयारी करने लगे।

घण्टों की मचलती हुई अङ्ग-अङ्ग की पीड़ा ने अपने शिकार को दबोच लिया। बड़ा कष्ट हो रहा था विधु बाबू को। सभी उपस्थित लोग समझ रहे थे कि इतना कष्ट भोगना मृत्यु से अधिक कठिन है। पर, पत्नी का ध्यान भी पति के कष्टों से अधिक अपने मस्तक के सिन्दूर पर था। वह चाहती थी—मेरी चूडी बचा ले भगवान्।

बाहर वकील साहब को देखने काफी लोग आ रहे थे और हाल पूछ कर चले जाते थे। उन्हें भीतर जाने की अनुमति नहीं थी। कुछ तो स्वाभाविक स्नेह के कारण आये थे। कुछ आये थे शिष्टाचार के नाते। और कुछ आये थे इसलिये कि अक्सर उनसे काम निकलता था। यदि अच्छे हो जायेंगे तो एहसान भी रहेगा।

कुछ देर नेत्र बन्द करने के बाद विधु बाबू ने पुनः आंखें खोलीं और बड़े कष्ट से कहा—'पानी'। पानी नर्स ने पिलाया पर उनके मुख के पास तक पत्नी आ गई थी। बड़ी कातरता के साथ उन्होंने अपनी चिरसङ्गिनी को देखा। उनके नेत्रों से उनके मन का दुःख प्रकट हो रहा था। कुछ देर एकटक परेश की माता को देखते रहने के बाद वे धीरे से बोले—'जा रहा हूँ हीरू'—और नेत्र फिर बन्द कर लिये। परेश की मां चीख उठीं। नर्स ने उनका मुख दबा दिया। परेश भी पिता के मुख के पास आ गया था।

विधु बाबू के नेत्र फिर धीरे-धीरे खुले। चेष्टा करके वे पुनः, बड़ी कठिनाइ से बोले—'घबड़ाना मत हीरू। परेश तुम्हारी सेवा करेगा। मेरा लड़का ऐसा-वैसा नहीं है। बेटा······'

उन्होंने बेटे के सर पर हाथ फेरने के लिये हाथ उठाना चाहा पर कार से कुचला हुआ हाथ उठा नहीं। दीपक बुझने के पहले अन्तिम बार भभक उठता है। विधु बाबू के नेत्रों मे न जाने कहां का प्रकाश आ गया था। उन्होंने एक बार भरपूर आंखों से पत्नी की ओर, फिर परेश की ओर देखा। कुछ कहना चाहते थे पर मुख से केवल इतना ही निकला—'हाय राम—'

नेत्र बन्द हो गये। चेहरा लटक गया। सब कुछ समाप्त हो गया। अस्पताल मे कुहराम मच गया। अस्पताल चिकित्सा के लिये है। कुहराम के लिये नहीं। मरीजों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

देखते देखते-विधु बाबू का शव अस्पताल से बाहर हो गया। अब न इस बात की चिन्ता थी कि शरीर जरा भी न हिले और न इसकी परवाह कि नया बँधा टांका टूटे नहीं, घाव खुल न जावे। प्राण रहते का नाम शरीर है। बिना उसके मिट्टी है।

मनोहर परेश को समझाने का प्रयास कर रहा था। नर्सें 'हीरू' को— परेश की माता ,को वृथा समझा रही थीं। पति की लोहे की अस्पताल वाली खाट पर सर पटक कर उसने अपने मस्तक का सिन्दूर धो दिया था। रक्त की धारा ने माथे की बिन्दी भी बिगाड़ दी थी। शोक के आवेश मे उसने अपनी चूड़ियां दांतों से चबा डाली थीं।

अस्पताल को जल्दी थी कि मुर्दा अहाते के बाहर हो। पड़ोसी तथा श्मशान तक साथ देने वालों को जल्दी थी कि जल्दी से सब काम समाप्त हो ताकि घर लौटने मे देर न हो। परेश की बड़ी बहन दूसरे नगर मे ब्याही थी। वह समय पर आ नहीं सकती। एक बहन जवान हो गई थी, अभी शादी करने के लिये रुपया नही इकट्ठा हो पाया था। एक अभी दस वर्ष की भोली कन्या है। सब परिवार अस्पताल मे एकत्र था।

बच्चों की रुलाई से छाती फटी जा रही थी। जो सुनता दो बूँद आंसू गिरा देता। घर का बड़ा क्या चला गया की सबका सर्वस्व समेट ले गया। कल का हरा भरा घर आज उजड़ गया। समय बदलते देर नहीं लगती।

कल लगभग इसी समय विद्यार्थियों के जलूस का नेतृत्व करते हुये इठलाता परेश कचहरी के सामने से निकला था। आज एक जलूस अस्पताल से उठा और उसका नेतृत्व कर रहा था रोता—सर पीटता परेश जिसे बड़ी कठिनाई से मनोहर सम्भाले हुये था। कल क्या होगा, कौन जाने। पुरुष बली नहीं होता। समय बलवान होता है।

नदी के तट पर चिता सजा दी गई। शव को नङ्गा कर के लोगों ने नहला दिया और मुख में अन्तिम बार जल देने के लिए परेश और उसकी माता तथा अन्य बच्चों को बुलाया गया। अञ्जलि भर कर जल मुख मे डालना था।

विधु बाबू का मुख खुला हुआ था। 'राम' कहने के साथ जो खुला तो खुला रह गया था। वह अपने परिवार से मुख खोलकर जल मांग रहे थे। जीवन का समूचा अध्याय अधूरे में छोड़कर जीने की प्यास लेकर मरे थे। कच्ची गृहस्थी, विवाह योग्य कन्या, नादान बच्ची और मण्डप के नीचे जिसका हाथ पकड़ा था, उसे अनाथ छोड़कर चले जा रहे थे। उनका मुख खुला हुआ जैसे पुकार रहा था—'मैं जा रहा हूॅ। मेरे साथ कोई नहीं जा रहा है। कोई किसी का नहीं है।'

पति के मुख में एक अञ्जलि जल डालते-डालते पत्नी फिर अचेत हो गई। स्मशान पर जीवन की नश्वरता का प्रकट नाटक देखने वालों में से दो-तीन आपस मे कह रहे थे—'यह उम्र और यह रूप'! स्मशान ही तो था। मुर्दों की उस बस्ती

में क़ितने ही झोंपड़े रोज़ बनते, जलते, बिगड़ते रहते थे। जो आता था, अपना ही रोना लेकर। पास में पड़े शव को या उसके ऊपर रोने वालों के प्रति उसको बहुत कम सहानुभूति या ध्यान जाता था। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। कोई किसी का नहीं है।

परेश ने अपने पिता के खुले मुख में जल डालते हुये ऐसा समझा—'बेटा, तूने मुझे इतनी जल्दी विदा कर दिया!'

अभी तक वह सिसक रहा था। अब वह दहाड़ें मारकर रोने लगा।

कुछ क्षण मे चिता की लपटे पृथ्वी से ऊँचे उठने लगीं।

(१२)

कल जिसे बड़े यत्न से पाला था आज उसे उतने ही यत्न से जला रहे हैं। चञ्चल मन के समान जलती हुई लकड़ियां भी कभी मचल उठती हैं। शरीर का कोई भाग कभी रूठकर इधर-उधर गिर पड़ता है। चिता की देख-रेख करने वाले कुछ भी नहीं छोड़ने वाले हैं। जब सांस का पंछी उड़ गया तो इस माटी के लोंदा को रखकर क्या करना है।

मन मारे विधु की विधवा दूर से बैठी हुई आग की लपटों का कम्पन देख रही है। वह बड़े नाज़ नखरे की पाली हुई थी। उसमें रूप था इसलिये घर में उसको सभी प्यार करते थे। उसमे गुण था इसलिये पाठशाला मे उसका बड़ा आदर था। उसे स्मरण हो आया—एक दिन उसकी मां ने उसे ध्यानपूर्वक देखकर कहा—'तू अब सयानी हो रही है। कल से पाठशाला मत जाना।' और बरबस उसे घर में क़ैद कर दिया गया।

एक दिन उसके द्वार पर बाजा बजने लगा। अब वह लजा गई। उसका ब्याह होगा। बारात आई। विधु बाबू का जवानी

में भरा-गंठा शरीर दिखाई तो न पड़ा पर उनकी बाते वह मण्डप मे सिकुड़ी बैठी हुई भी सुन सकती थी। बाते मीठी लगीं। फिर दूसरे दिन माता ने छाती से चिपका लिया। दोनों जी खोलकर रोने लगीं। पिता जी का पैर पकड़कर जब वह लिपट गई और उनसे गिड़गिड़ाने लगी—'बाबू जी, मुझे रोक लो—'

तब सभी उपस्थित लोगों के नेत्र भर आये। विधु बाबू भी रो पड़े। वह पालकी पर बैठकर ससुराल चली। उसी समय उधर से एक मुर्दा निकला। 'राम नाम सत्य है।' लोगों ने कहा बड़ा शुभ शकुन है। दूसरे घर का मुर्दा हर एक को शुभ ही मालूम होता है। कहते हैं कि रास्ते मे मुर्दा मिले तो जिस काम से चलो वह बन जाता है। इसलिए मुर्दा देखकर संसार से चले जाने वाले के प्रति दुःख नहीं होता। अपने स्वार्थ में सुख होता है।

जब वह रात को अपने कमरे मे अकेली रह गई तो उसे बड़ा डर लगा। घर से जो नाइन साथ आई थी, वह कुछ कहकर चली गई थी। बिचारी लड़की कभी अकेले कमरे में नहीं सोई थी। आज वह कैसे रहेगी। वह भय से चिल्लाने की सोच रही थी कि एक पुरुष ने कमरे में पैर रखा और मण्डप के नीचे जिस मीठी आवाज़ को सुना था, उसी आवाज़ मे प्यार से बोला—'हीरू।'

उसका नाम हीरा था। विधु बाबू ने प्यार में हीरू कर दिया था। और तब से उसे हीरू कहते थे। जीवन का एक एक दिन उसके नेत्रों के सामने से गुज़रने लगा। बाल-बच्चे हुये। घर-गृहस्थी के मामले में, पति की हल्की कमाई में पत्नी किस कठिनाई से काम चलाती है, कभी कभी घर में तकरारें भी हो जाती हैं, वह सब एक के बाद एक ध्यान में आने लगा। जब वह उन घटनाओं को याद करती, जब वह पति से मुँह मोड़कर

बैठ जाती, रूठ जाती—और क्या इसी दिन के लिये । वे चले गये । अब मैं किससे रूठूँगी । यदि मैं जानती कि वे मेरे सामने रहेंगे तो मैं ऐसा क्यों करती । उसका जी दु.ख रहा था । मन जल रहा था । कलेजा पकता जा रहा था । उसे पिछले दिनों की बाते सोचने मे जैसे अच्छा लग रहा हो । जब वर्तमान अतीत बन जाता है तो अधिक प्रिय प्रतीत होता है । बीते हुये काल की कठिनाइयों तथा सकट भी याद करने में अच्छे लगते हैं ।

वह पति की बातें सोचती और चिता की ओर देख लेती । कहां उस पहली रात की 'हीरू'—और कहां अस्पताल में, मरते समय की 'हीरू' की पुकार । वह छटपटाने लगी । चिता से चट-चट की आवाज़ आ रही थी । चर्बी जल रही थी । हड्डी पिघल रही थो । हीरू के शरीर को अपनी गोद में भर लेने वाला शरीर अङ्गारों की गोद मे भस्म हो रहा था । हीरू चिल्ला पड़ी—'हाय राम ।'

परेश का ध्यान उसकी ओर मुड़ा । इस क्षण वह केवल एक बात सोच रहा था । पिता ने उसकी माता से मरते समय कहा था—'वह ऐसा-वैसा लड़का नहीं है'—हमारे पिता जी का विश्वास और उसके विपरीत परेश की करनी ।

परेश ने अपनी माता को ओर देखा, मां ने परेश की ओर । दोनों भिन्न प्रकार के विचारों मे पुन डूब गये । माता ने सोचा—जब परेश पैदा हुआ था, कितनी खुशियां मनाई गई थीं । लड़की की पीठ पर लड़का हुआ था । पिता सदैव पुत्र से अधिक पुत्री को प्यार करता है । माता सदैव अपने पुत्र से अधिक स्नेह करती है । दोनों एक-दूसरे के मुख पर अपनी पत्नी या पति का प्रतिबिम्ब देखते हैं । बड़ा हौसला था पिता-माता को परेश बड़ा होकर उनकी बुढ़ापे की लकड़ी बन जावेगा ।

विधु बाबू तो कभी हँसकर कह भी देते थे,—'आजकल के लड़के काम नहीं देते हीरू।'

पर, हीरू ने ऐसा कभी नहीं समझा था। वह तो अपने बच्चों को ऐसा नहीं समझती थी। दोनों को बड़ा हौसला था परेश की भाँवर पड़ते देखने का। पर वे तो उसके, उस उत्सव के पहले ही चले गये।

परेश सोच रहा था—कोई भी पिता अपने बच्चे को बुरा नहीं समझता। हरएक पिता को अपने बालक के प्रति बड़ा हौसला होता है। बड़ी उमंग रहती है। कालेज में लड़के क्या कर रहे हैं, उन्हे कुछ नहीं मालूम। यदि मालूम होता तो भला उसका पिता उसे "ऐसा-वैसा" लड़का अवश्य समझता।

वह सचमुच ऐसा-वैसा है। उसे उर्मिला का स्मरण हो आया। बहुत देर से वह उर्मिला को भूला हुआ था उर्मिला का स्मरण आते ही उसे क्रोध आ गया। उसी के कारण आज इतना बड़ा अनर्थ हो गया। इसी समय विधु बाबू के शव के मस्तक के भाग से जोर का घुंआ-सा निकला। प्रकाशमय धुंआ था। लोगों ने कहा—मस्तिष्क पिण्ड जल गया।

इसी मस्तिष्क से संसार के कितने अनर्थ होते हैं। या, फिर कल्याण भी होता होगा। और आग की लपटों में यह कितनी तेजी से भस्म हो गया। लोगों ने आवाज़ लगा दी, परेश बाबू कपाल क्रिया करो।

जब दो लम्बे डण्डों से उसे पिता के मुर्दा मस्तक पर चोट मारनी पड़ी, उसका समूचा शरीर कांपने लगा। इस संसार में जन्म देने वाले के प्रति क्या यही व्यवहार होना चाहिये। क्या पालन-पोषण करने वाला अन्त मे इतना ही चाहता है। परेश ने तो डण्डा लेकर मस्तक छू भर दिया था। संस्कार का काम हो

गया। और लोगों ने उसके हाथ से डण्डा लेकर ज़ोर-ज़ोर से प्रहार करना शुरू किये।

परेश के पैर लड़खड़ा रहे थे। वह गिरने लगा। मनोहर उसे दौड़कर सम्भालने लगा।

देखते-देखते चिता बुझ गई। ई रू का सौभाग्य सूर्य पूर्ण अस्त हो गया। परेश पितृहीन हो गया। जहां चिता थी वहां की राख लोग नदी में फेंक कर साफ कर रहे थे। दूसरे के लिये स्थान करना था। विधु बाबू की अब कोई निशानी नहीं रह गई। वे सचमुच चले गये।

सब ने नदी मे स्नान किया जैसे बिदा हुए प्राणी से पूरी छुट्टी ले ली। जब तक चिता जल रही थी, हरएक को वैराग्य सूझ रहा था। अब सबको घर की याद आने लगी। वैराग्य की चर्चा बन्द हुई।

माता को सम्हाले परेश और परेश को सम्हाले मनोहर घर की ओर बढ़े। परेश की रोती कलपती बहने पीछे-पीछे चलीं। यह मरघट है। यहां कोई टिकता नहीं। मर कर या जी कर, सब जल्दी से जल्दी चले जाते हैं। पर, यहां की बस्ती कभी सूनी नहीं रहती। यहां का कारोबार कभी बन्द नहीं होता। यहां कभी छुट्टी नहीं होती। रात को दो पहर बीत चले थे पर जलती हुई चिताओं से समूचा श्मशान जागृत तथा देदीप्यमान था। यहां सदा दिवाली रहती है।

लोग कुछ ही आगे बढ़े थे कि "राम नाम सत्य" की ज़ोर ज़ोर से आवाज़ लगाता दूसरा मुर्दा आ पहुँचा। शव किसी सुहागिन का था—चूंदरी ओढ़े। मुर्दा आगे निकल गया। पीछे पीछे रोती कलपती उर्मिला और उसके पिता पैर घसीटते चल रहे थे।

परेश और उर्मिला की आंखे एक क्षण के लिये चार हुईं। मनोहर ने भी उर्मिला को देखा। सभी अचम्भे में आ गये। पर, एक जा रहा था। दूसरा आ रहा था। भेट क्षण भर की ही रही।

(१३)

दिन भर की घटनायें कुछ एक के बाद दूसरी ऐसी घटती रहीं कि उनका लेखा-जोखा मिलान करने का अवसर भी नहीं मिलता था। कालेज में उत्पात और उसके बाद प्रोफेसर साहब का यह कहना है कि उन्होंने खिड़की से एक काग़ज़ फेंका था— और मनोहर को अपने सर पर पड़े हुए पत्र का स्मरण हो आया यह सब तो कल की बीतो हुई बाते थी। वह आज कांपते हाथों से उर्मिला का पत्र वापस करने गया था पर उर्मिला अपने पिता के साथ घर के लिए रवाना हो चुकी थी। वह जितना ही उस विषैले पत्र से पीछा छुड़ाना चाहता था उतना ही वह हाथ धोकर उसके पीछे पड़ा हुआ था।

अपने कमरे में वापस आकर उसने पत्र मेज़ पर रखा और कपड़े उतार रहा था कि उसे स्मरण हो आया परेश के पिता का। उनके घायल होने का समाचार रात में ही मिल गया था। मनोहर अस्पताल की ओर भागा और परेश को घर पहुँचाकर रात मे वापस आया उसको भोजन करने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी। यदि भूख न भी हो तो अच्छा भोजन देखकर खाने को जी चल आता है। पर जिस छात्रावास की इमारत जितनी ही सुन्दर होती है उसका भोजन उतना ही ख़राब होता है। हर एक विद्यालय छात्रों की एक ही सुविधा का ध्यान नहीं रखते—भोजन का। जिस वस्तु से शरीर बनता है, उसी का हम सबसे अधिक अनादर करते हैं। इसीलिये हर एक छात्रावास

के निकट मिठाई, चाट, पान बीड़ी सिगरेट की दूकाने ज्यादा खुलती और चलती भी हैं।

मनोहर हलवाई की दूकान पर दूध पीने लगा। रेडियो का सेट ग्राहकों के आकर्षण के लिए लगा हुआ था। वे विद्वान महाशय बोल रहे थे—

'गुलामी के दो सौ साल मे, ब्रिटिश हकूमत मे हम केवल इतनी ही शिक्षा पा सके कि अखण्ड भारत की चालीस करोड़ की आबादी मे केवल सौ पीछे सात पुरुष और स्त्री पढ़ी लिखी थीं। आजादी के दस साल के भीतर सौ पीछे १३-१४ पुरुष तथा ४-५ स्त्रियां शिक्षित मिलेगी यानी जितना अंग्रेजों ने २०० साल में किया, हमने दस साल मे कर डाला—दुगना-तिगुना। अपना राज, अपना देना, अपनी हुकूमत होने का यही सब लाभ है।'

मनोहर को यह व्याख्यान अच्छा लगा। वह देर तक वहां बैठे रहने की लालच मे उस आधा पानी आधा दूध को धीरे-धीरे पीने लगा। रेडियो कह रहा था—

'अपनी पचवर्षीय योजना मे हमने शिक्षा के विस्तार के लिये काफी प्रबन्ध किया है। सन् १९५६ की अप्रैल से जो योजनायें शिक्षा के लिये चालू हैं उनसे सन् १९६२ को समाप्त होने वाले पांच साल मे २१८५०० लाख रुपया केवल उत्तरप्रदेश मे खर्च होगा। उत्तरप्रदेश की सरकार बुनियादी तालीम पर, प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक से अधिक जोर देना चाहती है ताकि देश मे कोई भी बे-पढ़ा-लिखा न रहे। हाईस्कूल और इण्टरमीजियेट (माध्यमिक) कालेजों की पढ़ाई मे भी काफी विस्तार होगा। सस्कृत शिक्षा का विस्तार, युवक कल्याण के कार्यों मे वृद्धि होगी। विद्यार्थियों को किस प्रकार पढ़ाया जावे इसके लिये

अध्यापकों की शिक्षा का भी ज्यादा से ज्यादा इन्तज़ाम होगा। स्कूल-कालेजों की सभ्यता, कला, संस्कार तथा सस्कृति की शिक्षा देने का अधिक प्रबन्ध होगा।

'प्रदेश की उन नगर पालिकाओं को छोड़कर जिनमें १४ वर्ष तक की उम्र के हरएक लड़के को शिक्षा देना अनिवार्य है, १५ और नगरपालिकाओं मे यह अनिवार्य शिक्षा देने की योजना लागू की जावेगी। दो नगरपालिकाओं मे लड़कियों को अनिवार्य शिक्षा देने की योजना लागू होगी। लड़कियों के लिये ६ नये माध्यमिक विद्यालय खुलेगे।

वाराणसो मे सरस्वती भवन पुस्तकालय में प्राचीन ग्रन्थों का अमूल्य संकलन है। इस पुस्तकालय मे काफी उन्नति की जावेगी। संस्कृत विद्या का प्रथम विश्वविद्यालय वाराणसी मे स्थापित होगा। आगरा, इलाहाबाद, लखनऊ, वाराणसी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों को बढ़ाने तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाये बढ़ाने के लिये काफी धन व्यय होगा।

'बच्चों के पढ़ने योग्य सरल पुस्तकों का प्रकाशन होगा। शरीर से असमर्थ, गूँगे, लूले, अपाहिज, अन्धे बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध होगा ताकि वे समाज के उपयोगी अङ्ग बन सके। लड़कों को देश की रक्षा के लिये तैयार करने के लिये सैनिक शिक्षा में विस्तार किया जावेगा।'

'पर, यह सब कार्य सरकार का ही नहीं है। जनता को भी, जो लोग ज़रा भी सामर्थ्य रखते हों उनका कर्तव्य है कि शिक्षा के यज्ञ में अपना योगदान दे। और कुछ न सही तो इसमे से हरएक पढ़ा-लिखा व्यक्ति कम से कम पांच बे पढ़े-लिखे भाई बहनों को शिक्षा दे! विद्या दान सबसे अच्छा दान है।'

रेडियो बन्द हो गया। मनोहर का दूध भी पेट मे जा चुका था। दिन भर की उथल-पुथल के बाद उसका जी ज़रा बदला ही

था। वह धीरे धीरे चला और अपने कमरे में आ गया। मेज़ पर उर्मिला का पत्र उसे चौंका देने के लिये काफी था। अब वह दिन भर का लेखा-जोखा मिलान करने लगा। जीवन में उसने पहली बार पिता की लपटें देखी थीं। ध्यान कहां से कहां पहुँच गया। उसे ऐसा लगा कि वे भयानक लपटे भयंकर होने पर भी एक विचित्र आकर्षण रखती थीं। वे बाहे फैला फैला कर सबको अङ्क में लेने का आवाहन कर रही थीं। कुछ क्षण मे उसको ऐसा दिखाई पड़ा कि वे लपटे परेश को समेट ले गईं, उर्मिला को निगल गईं, प्रोफेसर को खा गईं और अन्त मे उन्होंने मनोहर को भी जकड़ लिया। उसके मुख से अनायास निकल गया—'उफ।'

'क्यों क्या बात है!'—किसी की आवाज आई। न जाने कौन सी बुद्धि आई मनोहर मे उसने उर्मिला के पत्र को हाथ से दबा कर एक पुस्तक के नीचे खसका दिया और सकपका कर देखने लगा कि इतनी रात गये कौन उसके कमरे मे आ गया।

दरवाजे के पास खड़े प्रोफेसर साहब पिशाच की तरह मुस्करा रहे थे। वे आगे बढ़ते हुये बोले—'इतनी रात गये क्या उफ कर रहे हो! किसके नाम पर सांसे उछल रही हैं।'

अध्यापक के प्रति स्वाभाविक आदर-वश मनोहर उठ कर खड़ा हो गया। अपने मुख से 'उफ' निकल जाने की दुर्बलता पर उसे ग्लानि हो रही थी। पर, प्रोफेसर की बाते उसे तीर जैसी लगीं। उसने सर झुका कर साश्चर्य पूछा—'आप यहां कैसे। इतनी रात गये—'

'मै तुमसे उर्मिला का पत्र लेने आया हूँ।'

'उर्मिला का पत्र ···' मनोहर जीवन मे अपनी जान में कभी झूठ नहीं बोला था। वह घबड़ाया कि प्रोफेसर को पता

कैसे चला कि पत्र कहां गया। और फिर उसके—उस लड़की के पत्र में क्या है उसने अभी तक नहीं पढ़ा। पर इस व्यक्ति के मन में कुछ पाप अवश्य है। वह उस पत्र को स्वीकार करे या न करे।

प्रोफेसर ने उसे सोचने का मौका नहीं दिया। वे तीखे स्वर में बोले—'मैं उस पत्र को परेश से छीन लाया था। मैंने उसे परेश से बचाने के लिए खिड़की से फेंका था। जब कल सवेरे मेरी तुम्हारी बातें हुईं तुम्हारे चेहरे से मुझे कुछ खटका-सा हुआ। फिर मुझे पता लगाना पड़ा और यह मालूम हो गया कि रात को तुम हुसेन को देखकर उसी खिड़की के पास से निकले थे। पत्र तुम्हारे पास है। मुझे दे दो।'

प्रोफेसर के नेत्रों मे कठोरता थी। मनोहर ने समझ लिया कि इस पत्र से उसके मित्र परेश का भी सम्बन्ध है। वह झूठ बोलने का आदी नहीं था। झूठा किस्सा न गढ़ सका। 'जी, मेरे पास है। पर मैं नहीं दूँगा।'

'तुम जानते हो तुम्हारी परीक्षा का अन्तिम वर्ष है। डिवीजन (श्रेणी) देना मेरे प्रश्न पत्र पर निर्भर करता है। तुम्हारा परीक्षा फल नष्ट हो जावेगा।'

मनोहर ऐसे तेज़ विद्यार्थी के लिये प्रथम श्रेणी से नीचे पास होना बड़ी भयंकर बात थी। पर उसने दृढ़ता पूर्वक कहा—'जो हो—भगवान मालिक है।'

इतने मे तेजी से दरवाज़ा खुला और प्रोफेसर की पत्नी कमरे में घुस आईं। इधर-उधर बड़ी घबड़ाहट से देखकर चीख पड़ीं—'तुमको खोजते-खोजते थक गई। ग़ज़ब हो गया। हाय राम, मैं क्या करूँ!'

(१४)

प्रोफेसर साहब और मनोहर दोनों ही चौंक उठे थे। आज तक किसी ने प्रोफेसर की पत्नी को अपने क्वार्टर या मैदान को छोड़कर होस्टल के किसी कमरे की ओर जाते भी नहीं देखा था। वे यहां तक कैसे पहुँच गईं, यही समस्या नहीं थी; उनके चेहरे पर बड़ी घबराहट, बड़ी व्याकुलता थी। प्रोफेसर के सर पर पसीना आ रहा था। उन्होंने भर्राई आवाज़ में पूछा—'क्या बात है।'

'यह लो'—कहते हुए देवी ने उसके हाथ पर एक पत्र रख दिया। स्वयं वे इतनी थकी-सी थीं कि मनोहर की खाट पर बैठ गईं। प्रोफेसर साहब काग़ज़ पढ़ने लगे। पहले तो उनके कपटी दिल ने समझा कि उनसे ही सम्बन्ध रखने वाली कोई चिट्ठी है पर उनकी निगाह पत्र के सबसे नीचे पहले गई थी और वहां हस्ताक्षर था राधा का—उनकी एक मात्र युवती कन्या का।

पत्र की लिखावट मे कोई घबड़ाहट, कोई जल्दबाजी, कोई उतावलापन नहीं था। लिखने वाले ने सोच समझकर बना-बना कर लिखा था। हां, लिखने वाले ने एक गहरी भूल की थी। चिट्ठी लिखने के कागज़ पर किसी पुरुष का नाम और पता छपा था।

प्रोफेसर साहब की आंखे तेज़ी से पंक्तियों पर दौड़ रही थीं। पत्र उन्हीं के नाम—पापा के नाम था। नये भारत मे पिता जा बनने से ज्यादा अच्छा फैशन 'पापा' कहलाने मे है। राधा ने लिखा था—

'मै अपनी माता को पत्र न लिखकर आपको लिख रही हूँ। इसलिये कि आप मुझसे सहानुभूति करेंगे। मां तो ऐसी साध्वी और देवी हैं कि मुझे आश्चर्य होता है कि इन्होंने कालेज से

सचमुच मे बी० ए० पास किया था। अपनी कक्षा में शीला को देखकर मुझे मां का स्मरण हो आता है। शीला जितनी ही सुन्दर है, उतनी ही सीधी, उतनी ही मीठी। पर उसकी सच्चरित्रता की तपस्या मे वह बल है कि किसी लड़के की उसकी ओर आंख उठाने की हिम्मत भी नहीं पड़ती। शीला को देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि यदि लड़की स्वयं अपनी रक्षा करना चाहे तो लड़के कितने ही उपद्रवी क्यों न हों, उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

'पर, मैं घर मे जितनी सीधी लगती थी, उतनी न रह सकी। सिधाई मेरा कवच था। भोलापन मेरी ढाल थी। मैंने जब पहले दिन आपके साथ सिनेमा देखा, मुझे ऐसा लगा कि जीवन में स्वतन्त्रता, उल्लास, स्वतन्त्रता तथा प्रेम कितने महत्व-पूर्ण स्थान रखते है। मुझे सिनेमा का चस्का लगा और आपने सदैव मेरी मांग पूरी की। मां घर मे नौकरों को परेशान किया करती थी। चूल्हा, चक्की व सफाई में घर को सर पर उठाये रहती थीं और हम आप, बाप-बेटी सिनेमा देखा करते थे।

'पिता की निगाहे पुत्री से नहीं छिपतीं। मै यह जानती हूँ कि माता जी का रूप और गुण आपको उनकी सीमा के भीतर न रख सका। आपका चञ्चल मन मेरी सहेलियों तथा कालेज की अन्य छात्राओं के पीछे दौड़ता था। मुझे उस समय बहुत बुरा लगता जब आप 'बेटी' करके सम्बोधन करते हुए भी मेरी सहेलियों को अपने नेत्रों मे भर लेना चाहते थे। आप यह भूल गये थे कि आपके भी बेटी है।

'सिनेमा भवन मे ही मेरी विनोद से भेट हुई। हम एक-दूसरे के निकट आते गये। मैंने उसका पता जान लिया था, उसने मेरा। पर, मिलने के लिये हमारे पास सिनेमा भवन ही था। आपकी निगाहें चारों ओर की औरतों या लड़कियों को

ढूँढ़ने में लगी रहती थीं इसलिये आपने कभी न देखा कि हम सदैव एक-दूसरे के पास बैठते थे।

'क्षमा कीजियेगा। आपकी बेटी हूँ पर आप सब कुछ समझ सकते हैं, अतएव स्पष्ट लिख रही हूँ। मैं जानती हूँ आपकी दृष्टि एम० ए० की छात्रा उर्मिला पर है। कालेज भर में यह बात सबको मालूम है। मेरा विनोद वही लड़का है जिससे उर्मिला का विवाह उसके पिता जी करना चाहते थे। अतएव मैंने आपके मार्ग का कांटा दूर कर दिया है। हमने—विनोद ने यह निश्चय किया है कि हम सिनेमा के उद्योग मे ही पनप सकेंगे हमे फिल्म का जीवन बहुत पसन्द है। इसमें हमारा दोष नहीं है। भारतीय फिल्म इसमे मेरे जैसा जीवन का ही तो उपदेश देते हैं। दोष अपनी सरकार को दीजिये जो ऐसे फिल्मों को रोकती नहीं।

'क्षमा कीजिये, पत्र लम्बा हो गया। मैं आज सुबह की गाड़ी से बम्बई जा रही हूँ। जब तक यह पत्र आपके या माता जी के हाथों लगेगा, मै बहुत दूर निकल गई रहूँगी। मेरे तथा विनोद के बीच मे दखल भी मत दीजिये। मै बालिग़ तो हो चुकी हूँ—यदि मुझे ज़बर्दस्ती घर बुलाइयेगा तो कोई लाभ न होगा। अनर्थ ही होगा।

'अभी तो लोग मेरे इस कार्य पर नाक-भौह सिकोड़ेंगे। मुझे आवारा समझेंगे। पर जब मै बम्बई की प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री बन जाऊँगी तो समाज मे मेरा बड़ा आदर होगा। मेरे जैसी कितनी ही लड़कियां इस समय जिधर निकल जाती हैं, हज़ारों की भीड़ लग जाती है। देश मे एक बड़े नेता को एक तरफ खड़ा कीजिये और एक ओर एक फिल्म अभिनेत्री। देखिये भीड़ किधर जाती है। एक दिन ऐसा आयेगा कि मेरा पिता बनने मे आपको अभिमान होगा।'

'मां को बड़ा कष्ट होगा। बिचारी कितनी सीधी, कितनी अच्छी हैं। अम्मी, मै तुमसे जल्दी ही मिलूँगी। उनसे क्षमा मांगती हूँ। प्रणाम।

दो पन्नों मे सुन्दर अक्षरों मे लिखे हुये पत्र को पढ़ते पढ़ते प्रोफेसर का शरीर पसीने मे तर हो गया था। पत्र को हाथ में मोड़ते हुये वे सर पर हाथ रखकर मनोहर की कुर्सी पर बैठ गये। पत्नी रो रही थी। उनके नेत्रों की धारा सी बह रही थी। मनोहर चुपचाप सन्न मारे खड़ा रह गया। वह कुछ भी न समझ सका कि क्या बात है। पूछना उसने अनुचित समझा। कमरे मे सन्नाटा था।

प्रोफेसर को राधा के भागने का दुःख उतना नहीं था जितना दो बातों का। उनकी पत्नी को उर्मिला का भेद मालूम हो गया। उनको भयङ्कर चिन्ता थी कि समाज में लोग क्या कहेंगे! अब वह कैसे घर के बाहर निकलेंगे! क्या होगा उनका समाज में स्थान! भगवान ने उनकी क्या दुर्गति कर दी!

जो व्यक्ति दूसरे की लड़की को लड़की नहीं समझता था, वह भगवान को दोषी ठहरा रहा था। समय की गति है। समाज आज इसी प्रकार अन्धा हो रहा है। यदि ऐसा न होता तो एक युवक दूसरी युवती को छेड़ने के समय यह क्यों नहीं सोचता कि उसकी बहन के साथ भी कहीं पर कोई छेड़छाड़ कर रहा होगा।

जीवन ऐसा ही स्वार्थी है। प्रोफेसर को साहस नहीं हो रहा था कि अपनी पत्नी की ओर आंख उठाये। किस मुँह से उससे बातें करे। पत्नी से यदि वे दो शब्द भी सान्त्वना के कह सकते तो उस विचारी का धैर्य न छूटता। अब उनका धीरज समाप्त हो चुका था। वे प्रोफेसर पर झपट पड़ीं। उनका हाथ पकड़ते

हुए, झकझोरते हुए बोलीं—'मेरी राधा को ले आओ मैं प्राण दे दूँगी।'

मनोहर ने इतना तो समझा कि उनकी लड़की राधा कहीं चली गई है या खो गई है। उसने पति-पत्नी के बीच मे खड़ा रहना उचित नहीं समझा। वह कमरे के बाहर निकल गया।

छात्रावास में इतनी बड़ी घटना हो जाय कि प्रोफेसर और उनकी पत्नी एक विद्यार्थी के कमरे मे पहुँच जावे, प्रोफेसर की पत्नी हर कमरे में पति को तलाश करते घूमे और विद्यार्थियों को पता न चले। मनोहर के कमरे के चारों ओर विद्यार्थियों की भीड़ लगी हुई थी। सब उससे पूछ रहे थे—'क्या बात है।'

मनोहर क्या उत्तर देता। प्रश्नों की झड़ी उसे घायल कर रही थी। वह मुँह बन्द किये खड़ा था।

(१५)

परेश के सामने ससार मे अँधेरा था। जब तक पिता जी या घर का कोई बड़ा-बूढ़ा जीवित रहता है, पता भी नहीं चलता युवक को कि संसार चलाना कितना कठिन है। यदि वह युवक इसका थोड़ा बहुत अनुभव करता चले तो यकायक गृहस्थी की नदी में कूद पड़ने का गहरा धक्का सहन करने के लिये तैयार हो सकता है।

पर, कालेज के जीवन मे, पिता की कमाई पर, निश्चिन्त युवक यह कभी नहीं सोचता कि किस कठिनाई से कौड़ी-कौड़ी जोड़ कर, अपने आहार मे से काट कर बिचारा बाप उसे पैसा भेजता है। उस पैसे को सिगरेट से लेकर इत्र-फुलेल तक में फूँक डालने वाले परेश ने कल्पना भी न की होगी कि उसे इतनी शीघ्र पैसे-पैसे की जोड़-तोड़ सोचना होगी।

पिता जी के दाह-संस्कार तथा उसके सम्बन्ध के ख़र्च का उसे पता भी न चला। वह विक्षिप्त हो रहा था। उसकी माता बदहवास थी। उसे ध्यान भी न आया कि कौन कफ़न लाया, किसने लकड़ी ख़रीदी, किसने घाट पर खड़े यमराज की तरह के डोम सरदार तथा महापात्र को दान-दक्षिणा दी। मनोहर ने सब स्थिति अपनी प्रखर बुद्धि से समझ लिया थी। उसने अस्पताल में ही बैठे-बैठे अपने घर से पैसे का प्रबन्ध कर लिया था। पर, उसने किसी को कुछ प्रकट न होने दिया। स्मशान पहुँचते-पहुँचते परेश ने कुछ समझ लिया था पर शेष लोगों ने यही समझा कि परेश की आज्ञा से मनोहर ख़र्च कर रहा है।

पर, अब घर में स्थिर होकर बैठने के समय उसे सब कुछ सोचना पड़ा। उसने साहस करके माता से पूछा—'बाबू जी का बक्स कहां है।'

माता ने उदास स्वर मे कुछ कहना चाहा पर रुक गई। चाहे कितनो भी कच्ची तथा पतली गृहस्थी हो, सभी अपने धेले पाई मे से कुछ न कुछ बचा लेती है। इस बिचारी ने बराबर चेष्टा की कि कुछ बचा ले और वह भी इसलिए कि लड़की की वयस्कता मां बाप की प्रसन्नता को धूमिल करने लगी है। कुछ जेवर कपड़ा उसने बचाया या बनाया भी था। पर नक़द कुछ न था। पतिदेव के पास कुछ होता तो वे सदा उसके सामने हाथ पसारे क्यों आया करते। वकील की कमाई लोग नहीं देखते। वकील साहब नाम मे बड़ा जादू है। पर, वक़ील की पत्नी जानती है कि काम कैसे चलता है। हां, जिनकी वक़ालत चमक जाती है, उनकी पत्नी विधवा होने पर भी स्मशान में सर पीटने नहीं जाती है। रो लेती है, मगर घर पर।

परेश को अब घर का मालिक तो मानना ही पड़ेगा। जब से सवेरा हुआ है, पिता के दाह का दूसरा दिन हो रहा है, वह

'बच्चा' बहुत कुम्हलाया हुआ केवल यही सोच रहा है कि घर का काम कैसे चलेगा। मरने वाला चला गया। जीने वाला मर रहा है। लोग मातमपुर्सी के लिये आ रहे हैं। सभी उसे और रुला रहे हैं। कोई उसे यह नहीं बतलाता कि बिचारा क्या करे कि जीवन की नैया चले।

हां, एक साहब ऐसे जरूर आये थे जिन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखलाते हुए कहा था कि बेटा पूरी गृहस्थी का भार तुम पर आ गया है। मैं और क्या मदद करू। तुम्हारी बहिन की शादी ऐसी जगह लगाने की चेष्टा करूँगा कि पांच छः हज़ार में काम चल जावे। जैसे, यह रकम बहुत ही नगण्य और छोटी सी हो।

परेश ने पिताजी का बक्स पा लिया। माता ने उसके सामने कर दिया। उसमे ताला भी नही लगा था। जीवन बीमा का एक काग़ज़ निकला जिसके साथ एक पुर्जा लिपटा हुआ था। पॉलिसी क़िस्त न देने के कारण डूब चुकी थी। दस वर्ष हो गये। एक पुर्जे पर मकान के किराये का हिसाब था—चार महीना का किराया बाक़ी है। रुपये-रुपये वाले सात नोट तथा पैंतीस नये पैसे रखे हुये थे।

परेश का पिता इतना ही छोड़कर मरे थे। अब परेश की समझ में आ गया कि उसके पिता का जीवन कितना कठिन था। कितना दूभर था। कहां पता था उसको कि वे अपना रक्त निचोड़ कर परेश को पढ़ा रहे थे, इसलिये कि उनको यह विश्वास था कि 'परेश ऐसा वैसा लड़का नहीं है।'

उसके नेत्रों से टपटप आंसू गिरने लगे। अपने पिता के त्याग का महत्व अब उसने समझा। यकायक उसे उर्मिला का ध्यान हो आया! उसके मन में उर्मिला के प्रति इतनी घृणा भर

अब उसे अपना ध्यान आ गया। उसने पढ़ा है कि द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में सरकार १ करोड़ १० लाख नवयुवकों को जीविका देने जा रही है पर हर साल जो लोग जवानी की उम्र पर पहुँच रहे हैं उनकी तादाद भी इतनी तेज़ी से बढ़ रही है कि द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्त मे यानी सन् १९६२ मे एक करोड़ २० लाख बेकार बच जावेगे। पर यह समस्या संसार भर में है। चीन की द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना भी सन् १९६२ में समाप्त होगी। चीन की सरकार ७० लाख नौजवानों को काम दे रही है। पर योजना के अन्त मे १ करोड़ ७० लाख नौजवान बेकार रह जावेगे। परेश ने सोचा—वह बेकारों की श्रेणी में यदि रह गया तो उसका क्या भविष्य होगा। तब तो वह दरदर की ठोकर खाता रहेगा। अब वह घर-गृहस्थी कैसे चलाये।

उर्मिला फिर सामने आकर खड़ी हो गई–कल्पना में। फिर चुड़ैल आ गई। कितनी बदसूरत है यह, कैसे परेश ने इसे प्यार किया। क्या रखा है इसके रूप मे कि वह अपने पिता के जीवन का सौदा कर बैठा। विद्यार्थियों से हड़ताल करा कर उनकी पढ़ाई खराब करने से क्या वह उनके भावी जीवन की तैयारी में बाधक नहीं हो रहा था। क्या उसने राष्ट्र के नवयुवकों को निकम्मा बनाने का काम नहीं किया था।

हां, उर्मिला अच्छा तो वह श्मशान के रास्ते में रोती जा रही थी। क्या बात थी! माता बोल रही थीं—

'बड़ा बुरा समय है बेटा। देखो, राधारमण बाबू पर कैसा वज्र गिरा। देखते–देखते जरा देर मे उनकी स्त्री को पेट में दर्द उठा, लोगों ने कहा वायुगोला है, डाक्टर आये आये कि दिल की धड़कन बन्द हो गई। बेचारी उर्मिला अनाथ हो गई। क्या बताये, भाग्यवान थी कि पति के सामने चली गई।'

और हीरू को जीवन मे पहली बार राधा बाबू को पत्नी से ईर्ष्या हुई।

(१६)

उर्मिला बड़ी विपत्ति मे पड़ गई। जब वह अपने पिता के साथ घर आई, उसका जी बैठा जा रहा था। लड़की अपने पिता से अधिक अपनी माता से डरती है। पिता उसके भोले-पन के धोखे मे आ सकता है, माता की तीव्र आंखें कभी धोखा नहीं खाती। उर्मिला को रास्ते भर यह डर लगा हुआ था कि पिताजी कहीं कुछ पूछ न बैठे। भयवश वह तांगे पर उनकी बग़ल में न बैठकर आगे की सीट पर बैठी थी।

पर राधारमण बाबू न जाने किस विचार मे पड़े थे। बात-चीत एक दम बन्द थी। वे हड़ताल या पढ़ाई-लिखाई का हाल भी नहीं पूछ रहे थे। असल मे बात यह थी कि वे कुछ पूछना चाहते थे, पर उन्हे साहस नहीं हो रहा था। फिर, यह भी सोच रहे थे कि उर्मिला की मां तो है ही। उनसे बाते हो जायेगीं। वे क्यों झमेले मे पड़े। इसी मानसिक आलस्य में वे पड़े रहे।

इधर, उर्मिला भी ज्यों ज्यों घर की ओर बढ़ती जाती थी, अपनी रक्षा का उपाय सोचती जा रही थी। एक दम चुप रहना उसने अनुचित समझा। उसने पिताजी से यों ही पूछा—'अम्मा मजे मे है न!'

राधा बाबू को जैसे कुछ स्मरण हो आया। तांगे वाले से तेज़ चाल चलने का आग्रह करते हुए उन्होंने उत्तर दिया—'कल से उनका पुराना पेट का दर्द उठा है। वही वायु गोला या क्या है? रात भर चिल्लाती रही। पर उनको किसी प्रकार हड़ताल तथा उपद्रव का पता लग गया। तब से वे तुम्हारे लिये सर पटक रही हैं। मुझे भेजकर ही उसने दम लिया।'

पता नहीं क्यों, माता का समाचार प्राप्त कर उर्मिला को कष्ट नहीं हुआ, जितने भी एक सन्तान से आशा करनी चाहिये। उसे कुछ सान्त्वना मिली कि बीमारी में पूछतांछ नहीं कर सकेगी। फिर भी मां तो मां ही है। स्वार्थ मे कुछ नहीं सूझता। पर माता का कष्ट जी को कचोटता ही है।

घर आ गया। उर्मिला को इस समय अपनी माता की चिन्ता मे स्वाभाविक व्यग्रता के साथ नक़ली व्यग्रता भी इतनी शामिल करनी थी कि किसी गम्भीर बातचीत का मौका ही न लगे। वह मां के पास दौड़ गई। एक मात्र लाड़ली बेटी मां से चिपक गई। पेट की सन्तान को देखकर पेट का दर्द भी कुछ हल्का हुआ। माता बेटी को हृदय से चिपकाये रही। उसके नेत्रों से न जाने क्यों आंसू ढुलक पड़े।

'दर्द कैसा है अम्मा ?'

'कलेजा खाये जा रहा है।' मां ने कराह कर कहा।

उर्मिला पेट धीरे-धीरे सहलाने लगी। दर्द और उमड़ रहा था।

कुछ देर कराहने के बाद माता ने पूछा—'क्यों बेटी ...'

उर्मिला का कलेजा धक् से हो गया। उसने माता के मुख पर हाथ रखते बड़े प्रेम से कहा—'बोलो मत अम्मी, दर्द बढ़ेगा।'

मां चुप हो गई। राधा बाबू डाक्टर लिवाने चले गये। उर्मिला वहां से हटना चाहती थी। माता की पीडा के कारण चूल्हा भी नहीं जला था। वह कहती हुई उठी—'बाबू जी के लिये कुछ भोजन बना दूँ।'

पत्नी कितने ही कष्ट मे हो, उसको अपने पति की चिन्ता बनी रहती है। पति के लिये हरएक पत्नी मां होती है—माता की तरह से उसका 'पालन' करती है। पति ने भोजन कल रात

से ही नहीं किया है और बेटी उनके लिये भोजन बनायेगी, यह बात उसे अच्छी लगी। उसके नेत्रों ने उर्मिला के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

उर्मिला भोजन बना रही थी और सोचती जाती थी। माता बीमार है, दो चार दिन अच्छा होने मे लगेंगे। परेश का पिता बीमार है, दो चार दिन अच्छा होने में लगेंगे। उस दिन उसने उर्मिला को ऐसा झिड़क दिया था, न जाने क्यों। जल्दी उसे कालेज वापस जाकर परेश से सफाई करनी है। और सबसे बड़े सङ्कट की बात तो यह है कि उस नीच प्रोफेसर को परेश ने उसका पत्र क्यों दिखा दिया। जब तक परेश से भेट न हो, यह सब भेद कैसे खुलेगा। वह प्रोफेसर उस पत्र से अनेक अनर्थ कर सकता है।

माता बीमारी के बाद काफी कमज़ोर रहेगी। उनकी विपत्ति—सवाल जवाब की विपत्ति—इधर टल जावेगी! वह इतना कुछ सोच रही थी कि भोजन बनाने मे उसका हाथ भी जल गया। कालेज की पढ़ाई में उसे भोजन बनाना सीखने का अवसर ही नहीं मिला था। पहले छोटी थी तो दुलार में कोई काम नहीं लेता था। जब बड़ी होने लगी तो माता यदि घर का कुछ काम देती तो या तो पिता जी प्यार से मना कर देते या वह स्वयं रूठ जाती थी। जब कालेज जाने लगी तो रसोई बनाने का सवाल ही नहीं उठता था। 'पाक शास्त्र' की पुस्तक उसके अध्ययन का विषय था। पर, व्यवहार रूप से वह प्राय इस कला से अनभिज्ञ थी।

दाल बिना धोये उसने पतीली में चढ़ा दी थी। बड़ी कठिनाई से, एक बोतल मिट्टी का तेल खर्च करने पर तो चूल्हा जला था। और दाल निगोड़ी जल्दी पक नहीं रही थी कि हाथ जल गया। राधा बाबू डाक्टर लिवाकर आये। पत्नी की दशा खराब

हो रही थी। वे बहुत ही चिन्तित थे। पर बेटी रसोई बना रही थी, यही उनके लिये बहुत था। और वह जो उनको हाथों हाथ सम्भाले चल रही थी। नहाइये बाबू जी, खाना खाइये बाबू जी। किसी प्रकार, बेटी की खातिर वे भोजन पर बैठे। दाल मे नमक नहीं था। शाक मे ज़हर जैसा नमक। रोटी जली हुई थी। उर्मिला अपना जला हाथ दिखा रही थी। वे कुछ न बोले। कुछ खा-पी लिया।

वह बिचारे इस समय पत्नी की चिन्ता मे व्यस्त थे। तीसरा प्रहर होते-होते वे बहुत घबड़ा गये। यों तो उनकी पत्नी को कई बार ऐसा दर्द उठा था पर चौबीस घण्टे मे शान्त हो जाता था। आज रुकता ही नहीं है। डाक्टर पर डाक्टर आये। अस्पताल ले जाना चाहते थे। पर स्त्रियों को अस्पताल से स्वाभाविक चिढ़ है। उर्मिला की मा राजी नहीं हो रही थी।

धीरे-धीरे सांस का पक्षी भटकने लगा। अब उर्मिला को भी कुछ नही सूझ रहा था। माता का एक हाथ उसके मस्तक पर जाता और एक हाथ से अपने पति का हाथ कसकर पकड़ लेती। वह पति को छोड़ना नहीं चाहती। जब जाना होता है तो जी ऐसे ही घबड़ाता है। कुछ न छूटे—क्यों छूटे—क्या छूटने के लिए हाथ पकड़ा था। वह फूट-फूटकर रो पड़ी। एक तो विकराल पीड़ा, दूसरे निराशा तथा हताश रुदन !

उर्मिला का जी बैठता जा रहा था। उसने इतनी पीड़ा कभी नहीं देखी थी। राधा बाबू का जी छोटा होता जा रहा था। वे भी लगातार रो रहे थे। मुहल्ले की स्त्रियां उस समय मरीज़ को शान्ति पहुँचाने के बजाय स्वयं रोकर या कलपकर प्राण पखेरू को सङ्कट मे डाल रही थी। यदि कोई शान्त था तो डाक्टर।

मरने वाले के चारों ओर मरने के पहले कुहराम मचा देने से अधिक अन्याय तथा अत्याचार उस बिदा होने वाले प्राणी के प्रति और कुछ नहीं हो सकता। कितना कष्ट होता होगा उसे सब कुछ छोड़कर महाशून्य की यात्रा करने में।

यकायक उर्मिला की माता ने हाथ से कुछ इशारा किया—पति की ओर। वे कुछ न समझे। कोई कुछ न समझा।

उसमें कहां से बल आ गया कि झटके से उठकर उसने अपना हाथ पति के चरणों पर लगा दिया और फिर एक हिचकी ली। सब समाप्त हो गया। उर्मिला और राधा बाबू उसके निर्जीव शरीर पर गिर पड़े।

कुछ देर में, रात के कई प्रहर बीते, लोग ले चले—राम नाम सत्य है।

(१७)

मनोहर अपनी कक्षा मे आ बैठा। तीन दिन बाद कालेज खुल गया था, आखिर लड़के कब तक छुट्टी मनाते। न तो हड़ताल करने मे किसी को दिलचस्पी थी, न इच्छा। हड़ताल के साथ उपद्रव तथा छुट्टी का ही मोह था। पढ़ने वाले छात्रों या छात्राओं की संख्या अधिक थी पर मुँह खोलने का उनका साहस नही हो रहा था।

कालेज खुला तो जैसे कुछ हुआ ही न हो। परेश के उपद्रवी नेतृत्व को मानने वालों ने इतना भी न कहा कि उसके पिता की मृत्यु के करण कालेज मे समवेदना का प्रस्ताव पास कर लिया जावे। जिन लड़कों ने विधु बाबू को पीटा था, वे भयभीत थे कि पुलिस को उनके नाम का पता न लग जावे। जो बिचारा मुवक्किल 'गुण्डा' कहकर पकड़ा गया था, वह दूसरे दिन ही छोड़ दिया गया था। पुलिस अपराधियों का पता लगा रही थी। दो

तीन लड़के छात्रावास छोड़कर भाग रहे थे पर लोगों ने सलाह दी कि इससे अनायास का शुबहा पैदा होगा। अतएव परेश के पिता को सभी भुलाने का प्रयत्न कर रहे थे।

मनोहर प्रोफेसर साहब की उस रात की घटना से काफी बेचैन हो गया था। बात छिपती भी कब तक। सब पर प्रकट हो गई। कालेज भर जान गया। प्रोफेसर साहब से लोग मिलने आने लगे। उनको मुँह दिखाना कठिन हो गया। राधा ने पत्र ऐसा लिखा था कि किसी को दिखा सकते नहीं थे। राधा के यकायक चले जाने का झूठा कारण कुछ बनाये न बन पड़ा पर सत्य के निकट पहुँचने तक इतना ही कहा जा सकता था कि 'पढ़ाई छोड़ी नहीं है। बम्बई चली गई है।'

कालेज मे आकर लड़कों का सामना करने का उनका साहस नहीं होता था। उन्हें मनोहर से अनायास घृणा हो गई थी। उस पर क्रोध आ रहा था। उसने उर्मिला का पत्र पा लिया है। उसने राधा की वास्तविक घटना भी जान ली है—वही सबसे बड़ा कलंकी है। उनके मन में अच्छी भावना तो उठ नहीं सकती थी। एक ओर तो वे ग्लानि से भरे जा रहे थे, जले जा रहे थे। दूसरी ओर उनको अपनी पत्नी के तीखे वाणों से बराबर घायल होना पड़ता था। लड़की खोने का क्षोभ उस देवी के मन में जितना था उतना ही क्रोध अपने पति के चरित्र पर। यदि उनका पति ठीक रास्ते पर होता तो राधा ने कुमार्ग न पकड़ा होता। वह नारी थी—भारतीय सच्चरित्र नारी। उनकी समझ मे भी नहीं आ रहा था कि रूप, गुण, विद्या सब उसमें है तब उसका पति एक दूसरी अपनी लड़की की उम्र वाली कन्या पर कैसे रीझने लगा। उनके इस प्रश्न का उत्तर कोई पुरुष ही दे सकता था। यदि समाज का भय न हो, समाज का विधान न हो तो कितने पुरुष पत्नी व्रत रह सकेंगे!

वे रात दिन पति को ताना मारती -'हमारी राधा लाओ। तुम उर्मिला के पास रहो।'

प्रोफेसर साहब ने कालेज खुलने के दिन छुट्टी ले ली। उनको घर का घाव छात्रों की चोट, उनकी व्यर्थ भरी आंखों से अधिक उचित प्रतीत हुआ। वे घर बैठे बैठे सोच मे डूबे समय गुजार रहे थे कि परेश के पिता, उर्मिला की माता—दोनों की मृत्यु का समाचार मिला। दोनों को सहानुभूति का पत्र तो लिखा ही जा सकता था। लिखा भी और मनोहर के प्रति अपने विष को वे उन पत्रों के अन्त मे उड़ेल बैठे। उन्होंने लिखा—

'मैं भी बड़ी विपत्ति में हूँ। राधा बम्बई गई है। जाने के पहले उसने अपनी माता से बतलाया कि मनोहर कालेज के लडकों से परेश और उर्मिला के बारे में कुछ कहता रहता है। मुझे भी घसीटता है।

खैर। भगवान करे तुम जल्दी अपनी विपत्ति पर विजय प्राप्त करो और कालेज वापस आओ। तुम्हारा पत्र न जाने कैसे मनोहर के पास था या है।

परेश और उर्मिला के लिये लिखे पत्रों का विषय एक सा ही था।

मनोहर को यह सब कुछ नहीं मालूम। वह कालेज में अपनी आदत के अनुसार संसार का सब कुछ भूलकर अध्यापक का व्याख्यान बड़े ध्यान से सुन रहा था। उस दिन शिक्षा-शास्त्र पर व्याख्यान हो रहा था।

अध्यापक जी कह रहे थे—'भारत मे शिक्षा ने कितनी प्रगति की है, इसके ताजे आंकड़े तो नही मालूम। पर सन् १९५३-५४ तक के आंकड़े तैयार हो गये हैं। भारत की केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने, कुल मिलाकर शिक्षा पर उस साल

१ अरब, १० करोड़, ३१ लाख, २० हजार रुपया खर्च किया था। कुल विद्यार्थियों की सख्या, लड़के, लड़कियों को मिलाकर, २ करोड़ ७६ लाख २८ हजार २२७ थी। यानी, हिसाब लगाओ तो पता चलेगा कि देश की समूची आबादी के हिसाब से फी विद्यार्थी पीछे ४२ रुपया ५ पैसा खर्च हुआ और जनता के हर एक व्यक्ति का सवा दो रुपया साल खर्च हुआ।

'विश्वविद्यालयों मे विद्यार्थियों की संख्या, लड़कों की ५,२५,४१७ थी जिन पर २१,४३,२२,६४० रुपया खर्च हुआ तथा लड़कियों की संख्या ६८,६४४ ही थी जिन पर १,०७,५२,३१६ रुपया खर्च हुआ। माध्यमिक यानी इण्टरमीजियेट स्कूलों मे ५१, १३००७ लड़के थे जिन पर ३५,२२,५२, ४१७ रुपया खर्च हुआ तथा ११,६३,५३१ लड़कियां थीं जिन पर ६,४८,३५,७७३ रुपया खर्च हुआ।

प्रारम्भिक पाठशालाओं मे देश भर मे १,४६,७३ ५६० लड़के थे जिन पर ४१,७१,४१,७३५ रुपया खर्च हुआ था और कुल ६०,४८,०३८ लड़कियां थीं जिन पर ४,३८,१४,२२३ रुपया व्यय हुआ। इस प्रकार आप देखेंगे कि शिक्षा की दिशा मे भी हमारे देश मे काफी काम हो रहा है।

मनोहर इन आंकड़ों को बड़े चाव से लिख रहा था। पहले तो अपने देश की प्रगति पर उसे अभिमान होता था। दूसरे, अध्यापक के व्याख्यान का नोट ले लेना वह हर एक छात्र का कर्त्तव्य समझता था। कालेज मे सोना, मुॅह बनाना या पेंसिल से खेलना वह आगामी जीवन के लिए घातक समझता था। सम्भ्रान्त परिवार का था—उसे नौकरी भी नहीं करनी थी। पर, विद्यार्थी जीवन की मर्यादा की पवित्रता को वह भली प्रकार समझता था।

पढ़ाई समाप्त कर वह कमरे में गया। उर्मिला की माता की यकायक मृत्यु से भी वह दुखी था। किसी की भी माता हो—माता फिर नहीं मिलती। गई तो गई। उसने तय किया कि वह शहर जावे। परेश का समाचार ले। उर्मिला का समाचार ले। हो सके तो वह कुछ सहायता भी करे। वह पहले अपने घर गया। माता से कुछ रुपये लिये और दोनों सहपाठियों के यहां चल पड़ा।

परेश की दशा विचित्र थी। दाह-संस्कार करने के कारण उसका सर घुटा हुआ, अजीब-सा लग रहा था। वह चार दिन में सूख गया था। न तो वह चञ्चलता थी और न युवक-सुलभ उत्साह। घर-गृहस्थी मे वह अपना सब कुछ खो बैठा था। जिस समय परेश एक सोनार के हाथ अपनी माता के हाथ के कड़े का सौदा कर रहा था, मनोहर आ गया। परेश लजा गया।

मनोहर समझ गया। उसने धीरे से कहा—'क्या चाहिये परेश।'

परेश को प्रोफेसर का पत्र मिल चुका था। मनोहर से उसको वैसी ही स्वाभाविक चिढ़ थी जैसे हरएक बुरे, लम्पट लड़के को परिश्रमी, सच्चरित्र लड़कों से होती है। उसे यह सन्देह था ही कि उर्मिला का पत्र मनोहर ने पढ़ लिया है। दूसरे अब पता चला कि उर्मिला का पत्र भी उसने पढ़ लिया है। उर्मिला का पत्र तो प्रोफेसर के पास होगा। प्रोफेसर के पत्र का तात्पर्य परेश ने यह समझा कि उर्मिला का पत्र मनोहर ने अवश्य पढ़ लिया है। न जाने क्या अनर्थ करेगा। बिना कुछ सोचे-समझे परेश उबल पड़ा—'आप मुझे अपमानित करने आये हैं। बड़ा घमण्ड है आपको अपने पैसों का। मै लानत भेजता हूँ पूंजीपतियों पर। मै आपसे भीख नहीं मांगने गया था कि पूछ रहे हो—क्या

चाहिये—और उसने भद्दे ढङ्ग से मुँह बिचका कर मनोहर के प्रश्न की नक़ल की।

मनोहर अवाक् रह गया। उसे कुछ समझ में ही नहीं आया। कुछ देर तक वह चुपचाप खडा रहा। उसके नेत्र डबडबा आये थे। आखिर इतना अपमान क्यों हो रहा है।

वह धीरे से उर्मिला के मकान की ओर चल दिया। राधारमण मित्रों से घिरे बैठे थे। पत्नी के मरने पर पति को उतना दुख नहीं होता जितना पति के मरने पर पत्नी को। फिर भी वे उदास थे ही। मनोहर बैठा। उर्मिला सहपाठिनी से मिलने की इच्छा प्रकट की। पर उसने देखा कि उर्मिला उसी समय वहां आ गई और उसे देखकर उलटे पाव वापस चली गई। जब तक मनोहर बैठा रहा, वह न आई।

(१८)

समय जाते देर नहीं लगती। कठिन से कठिन समय भी कट ही जाता है। यदि प्रयत्न न करने पर भी कट ही जाता है। रात चाहे कितनी भी अँधेरी क्यों न हो, सबेरा होता ही है। घर की मुसीबत, पैसे की परेशानी, विधवा माता का विलाप और सर पर खड़ी विवाह योग्य बहन—इन सब समस्याओं ने मिलकर कल के उपद्रवी तथा उन्मुक्त परेश मे विचित्र परिवर्त्तन कर दिया था।

वह अपने बीते हुये दिनों को सोचता तो उसके नेत्रों मे आंसू आ जाते। कितना परिश्रम किया होगा उसके पिता ने उसकी (परेश की) मस्ती को कायम रखने के लिए। विद्यार्थी जीवन की अपनी मूर्खताओं को सोचते-सोचते उसे उर्मिला का ध्यान हो आता और तब वह सोचता कि क्या धरा है उस लड़की के रूप मे कि वह उस पर रीझ गया था। सादा-सा चेहरा

है। ऐसी लाखों लड़कियां देश में हैं। वह क्यों अपना मन खो बैठा था। तब उसे अपनी दुर्बलता पर क्रोध आता, अपने ऊपर घृणा होती। साथ ही, जब वह यह सोचता कि उर्मिला का पत्र मनोहर के पास है तो उसकी ग्लानि और बढ़ जाती। मनोहर ने उस पत्र को इसलिए दवा रखा है कि परेश को सदैव अपने पञ्जे मे रखे। उसे मनोहर पर बड़ा क्रोध आता।

मनोहर उसका स्वजातीय था। उर्मिला नही। अत: पिताजी के सभी संस्करों में मनोहर आता रहा। परेश ने उसका जो अपमान किया था, उसका कारण उस सीधे आदमी के दिमाग़ में केवल एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया थी। मनुष्य अपने पर उपकार करने वालों से भी घृणा करने लगता है। उसे ऐसा लगता है कि मै इस व्यक्ति से छोटा हो गया हूँ। मनोहर ने परेश के प्रति अपने व्यवहार में कोई परिवर्त्तन नहीं आने दिया। उसे कारण भी तो नही मालूम था। परेश की माता का स्नेह मनोहर पर बढ़ता ही गया।

परेश ने पिता का श्राद्ध स-यत्न किया। तेरहवीं के दिन ब्राह्मण भोजन भी कराया गया। तीन ब्राह्मण प्रतिदिन के हिसाब से ३९ ब्राह्मणों को भोजन-दक्षिणा मिली। सायंकाल बिरादरी तथा ग़ैर बिरादरी की दावत ज़रूरी थी वरना समाज मे स्थान क्या रहता। जिनको मरघट भी जाने का अवकाश नहीं था, वे दावत में कैसे न आते। जो एक शब्द सहानुभूति नहीं कह सके थे, वे दावत खा रहे थे और धीरे-धीरे भोजन की खराबियों की चर्चा करते जाते थे। दावत मे अच्छा से अच्छा खाना बने, आलोचना करने वालों की कमी नहीं रहती, विशेष रूप से वे आलोचना करते हैं जो कभी अपने घर दावत नहीं देते।

बड़ा कड़ा कलेजा कर माता ने अपना एक जेवर बेज दिया था—पति के संस्कार के कार्य के लिए। वह विचारी एक-एक

पाई अपनी बच्ची की शादी के लिये बचा रही थी पर पति सन्तान से बड़ा होता है।

उर्मिला के यहां भी सब कार्य समाप्त हुआ। एक दिन का अन्तर था। बड़ी कठिनाई से उर्मिला ने इतने दिन घर में बिता दिये थे। गर्मी की छुट्टियों मे भी वह एक साथ इतने दिन घर में नहीं रही थी। मां के न रहने से उसे अकेले डर भी लगता था। पत्नी के न रहने पर पुरुष का झुकाव अपनी कन्या पर बहुत अधिक हो जाता है। कई दृष्टियों से वह पत्नी की कमी पूरा करती है। भोजन, गृहस्थी, देखभाल मे। राधा बाबू उर्मिला के प्रति बहुत अनुरक्त हो गये थे।

उर्मिला जो बाते करती थी, वह जहां की तहां रह गईं। उर्मिला भी सोचती कि उसकी माता अपना प्रश्न अधूरा छोड़ कर मर गई। उसे अपनी यह रचा कुछ अच्छी लगी। परेश के व्यवहार से वह दु खी था। पर उसने सोचा कि इसका कारण घरेलू परेशानी ही है। कभी-कभी वह यह भी सोचती कि अब परेश का पिता मर गया है। वह अधिक स्वतन्त्र होगा। यह भी कुछ अच्छी सी बात थी। उर्मिला ने निश्चय किया कि माता की तेरहवी के दूसरे दिन वह सहानुभूति प्रकट करने के बहाने परेश से मिलने जावेगी।

दो पहर का समय था। परेश बाहर के कमरे मे मन मारे बैठा सोच रहा था कि अब वह क्या करे। पढ़ाई तो छोड़नी ही पड़ेगी। बी० ए० पास कर चुका है। वकालत पास कर चुका है। एम० ए० की परीक्षा मे न बैठना ही ठीक होगा। आगे की पढ़ाई तो उसने इसलिये चालू रखा था कि जितने दिन जीवन की समस्या टलती रहे, आज़ादी रहे, उतना ही अच्छा है। वकालत कर नहीं सकता। मन नहीं लगता। नौकरी की तलाश करनी पड़ेगी।

फिर उसने सोचा—लोग कहते हैं कि आजकल बिना सिफ़ारिश नौकरी नहीं मिल सकती। जब तक कोई बड़ा आदमी पीठ पर हाथ न रखे, नौकरी कहां से मिलेगी। उसका किसी बड़े आदमी से परिचय नही है। इतनी बाते वह सोच रहा था कि पड़ोस के एक समाज सेवक वहा आकर बैठ भी गये, उसे पता न चला। वे भी चुपचाप बैठे रहे। सोचते-सोचते घबड़ाकर उसके मुँह से निकल पड़ा—'क्या करूँ भगवान्।'

अब समाज सेवक बोल बैठे। धीरे-धीरे परेश ने अपनी चिन्ता उनके सामने प्रकट की। दुःख कह देने से बोझा हल्का हो गया। समाज सेवी बोले—'यह आपका भ्रम है कि आज कल सिफारिश से ही नौकरी मिलती है। यह हो सकता है कि किसी एक व्यक्ति के हाथ मे एक-दो जगहे हों तो वह मनमाना कर सकता है। पर, सिफारिश वाली भावना को मजबूत किया है हम सावजनिक कार्यकर्ताओं ने। हमारे पास लोग सिफारिशे लेकर आते है। हम झट 'हां' कर देते है। अगर काम हो गया तो वाहवाही लूटते हैं वरना सरकार या अधिकारी को गाली दे देते हैं।'

'आपकी सूचना सही नहीं है। अभी उस दिन लोग बतला रहे थे कि रामलाल जी की सिफारिश से राममोहन को पुलिस की सब इन्सपेक्टर की जगह मिल गई।' परेश ने अविश्वास के शब्दों मे कहा।

'मै यह नहीं मानता। यह भी झूठ है। सन् १६४८ के पहले उत्तर प्रदेश में सब इन्सपेक्टर का जो चुनाव होता था, उसमें चुनाव बोर्ड के अध्यक्ष डी० आई० जी० (डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल) पुलिस को अध्यक्ष के नाते १०० नम्बर तक देने का अधिकार था। अब तो बोर्ड के पांचों मेम्बरों के अधिकार बराबर हैं। चुनाव के समय फेहरिस्त निकालकर अपने उम्मीद-

वार का नाम नहीं देखा जा सकता। सैकड़ों सिफारिशों में कितने नाम याद रहेगे ! यदि एक-दो नाम याद भी रहे तो एक मेम्बर पच्चीस मे बीस नम्बर दे देगा। पर, शेष ने यदि पांच-पांच ही दिये तो ! रामलाल परीक्षा मे सफल हुआ होगा अपनी योग्यता से। हम लोग सिफारिश का वादा करके उम्मीदवार का आत्म विश्वास लुप्त कर देते हैं।

परेश सर झुकाये सुनता रहा। समाज सेवक महाशय कुछ देर चुप रहकर बोले—'१०० रुपये के ऊपर की हर एक सरकारी नौकरी बिना पब्लिक सर्विस कमीशन के सामने गये या चुनाव बोर्ड के सामने गये नहीं मिल सकती। लोगों का ऐसा भ्रम है कि पब्लिक सर्विस कमीशन पर भी सिफारिश चलती है। भ्रम का क्या इलाज है। अगर ठीक से पता लगाओ तो मालूम होगा कि जिनकी न कोई सिफारिश न कोई पूछ है, वे ही सबसे पहले उतरते हैं। आवश्यकता है योग्यता की। सिफारिश की नही।'

परेश का आत्म-विश्वास वापस आ रहा था। अभी तक वह अपने को खोकर पराये का मुँह ताक रहा था। अब उसे ऐसा लगा कि वह अभी तक क्यों नहीं अपने को पहिचान पाया।

समाज सेवक बोले, 'तुम परीक्षा मे सदैव अव्वल नम्बर मारते रहे हो। अब क्यों घबड़ाते हो। समाचार पत्रों में विज्ञापन देखकर सरकारी प्रतियोगिताओं मे बैठो। डिप्टी कलक्टरो की परीक्षा भी होने वाली है।'

परेश के सामने प्रकाश दीख पड़ा।

समाज सेवक उठते हुये बोले—'जीवन का संघर्ष घबड़ाने से कठिन होता जाता है। परिश्रम से पहाड़ भी टूट जाता है।'

वे नमस्कार कर दरवाजे की ओर बढ़े। परेश उठकर उन्हें बिदा दे रहा था कि उसके सामने उर्मिला खड़ी हो गई।

(१६)

उर्मिला को देखते ही परेश के नेत्र लाल हो गये। अब यह दुष्टा यहां क्या करने आई है! मेरा और कुछ इसे क्या स्वाहा करना है। पर उर्मिला के नेत्र तरल थे। उनके प्यार के साथ ही परेश की विरक्ति के प्रति वेदना थी। स्त्री के–युवक के–प्यार मे स्वार्थ या स्वार्थ का सयोग नहीं होता। उसमे 'शर्त' नहीं होती। पुरुष स्त्री की तुलना मे कही अधिक स्वार्थी होता है। उर्मिला ने उस परेश को आज १४ दिन बाद देखा है, जैसे बिना देखे उसका एक दिन नहीं बीतता था।

वह जब घर से चली थी, उसे बड़ा संकोच हो रहा था। पिता ने कोई आनाकानी नहीं की। बिचारे का पिता मर गया है, जरूर देख आओ। पर उर्मिला सोच रही थी कि उसकी (परेश की) माता से शायद पहले सामना पड़ेगा। यों तो वह माता को चाची जी कहती थी। पर, चाची जी उसका परेश से मिलना अनुचित तो नहीं समझेंगी। पर, परेश सामने ही पड़ गया। उसकी एक कठिनाई दूर हुई।

परेश ने कठोर पर घबड़ाये स्वर मे पूछा—'कहिये!'

उर्मिला ने इस 'कहिये' मे इतने अनादर का पुट पाया कि वह चौक उठी। फिर भी, वह संयत भाव से बोली—'देखने को जी चाहता था।'

जिस परेश को वह 'तुम' से अधिक आदर न दे सकी थी, आज अनायास उसने 'आप' का उपयोग किया।

परेश रुखाई से बोला,—'मैं ठीक हूँ। जीवन में यह सब लगा ही रहता है। आपकी विपत्ति मे मेरी हार्दिक सहानुभूति है।'

वह उठ खड़ा हुआ। जैसे, उर्मिला से और कोई बाते ही नहीं करनी हैं। उर्मिला बैठी रही। उसके मन में आँधी उठ रही थी। वह परेश को अपने नेत्रों मे भर लेना चाहती थी। अपमान ही सही—पर क्या पिता की मृत्यु उसे इतना निठुर बना देगी।

जब उर्मिला न उठी तो परेश के दिमाग़ का पारा और ऊपर चढ़ा। उसने झुंझलाकर पूछा—'कहिये, और कुछ कहना है ?'

उर्मिला का चेहरा तमतमा उठा। यदि परेश के नेत्रों पर पर्दा न पड़ा होता तो वह स्पष्ट देख लेता कि इस तमतमाहट से उसका सौन्दर्य कितना बढ़ गया है। अपमान तथा ग्लानि से उसके नेत्र डबडबा आये। बड़ी कठिनाई से वह अपने को सम्हाल पा रही थी। उसने खड़े होते हुये इतना ही पूछा—'आप मुझसे नाराज़ हैं, न जाने क्यों। मैं नही जानती मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा।' उसके मुख से 'तुम' निकला। वह उत्तर की प्रतीक्षा मे चुप हो गई।

परेश बरस पड़ा—'मेरा सर्वस्व नष्ट करके पूछती हो कि मैंने क्या बिगाड़ा है। तुमने मेरा सर्वनाश कर दिया।'

'मैंने—' उर्मिला का मुँह खुला रह गया।

परेश कहता गया—'पिता जी को ले बैठी। खा गई। अब मेरी माता बची हैं। क्या उनको भी ले जाने के लिये आई है।'

उर्मिला पर वज्र गिर पड़ा। वह फिर बैठ गई। उसने अपनी सुन्दर आंखे फाड़कर पूछा—'मैंने क्या किया भगवान।'

परेश जैसे उस पर हमला करते हुये बोला—'तुमने—तुमने ! हड़ताल किसके लिये हुई।'

उर्मिला अब समझी। उसके नेत्रों से लगातार वर्षा हो रही थी। परेश उत्तेजित होकर कमरे में घूम रहा था। सिसकते-सिसकते उर्मिला उठी। उसके मुख से बोली भी नहीं निकल

रही थी। फिर भी, बड़ी कठिनाई से उसने कहा—'तुमने मेरा पत्र मनोहर को क्यों दे दिया।'

परेश चौंक उठा 'मैंने! मैंने मनोहर को दिया!! यह तुमसे किसने कहा!!!'

'प्रोफेसर साहब ने'—उर्मिला धीरे से बोली।

अब परेश बैठ गया। उसके मस्तक पर पसीना आ गया। प्रोफेसर ने ऐसी झूठ बात क्यों कह दी! उसका क्या स्वार्थ था इस बात में! उसका दिमाग़ कई तरफ दौड गया।

उधर उर्मिला जोर से पूछ रही थी—'बोलिये।'

परेश उठा। उसे अनायास उर्मिला के ऊपर क्षण भर के लिये दया आ गई। उसने नर्मी से कहा—'यह सब झूठ है। पत्र प्रोफेसर के पास है। वह मेरे कमरे से चुरा ले गया था।'

परेश फिर चुप हो गया। उर्मिला ने भरपूर नेत्रों से उसकी ओर देखा। परेश सर नीचा ही किये बैठा रहा। उर्मिला ने दरवाजे के पास पहुँच कर आर्द्र होकर कहा—'अच्छा, मैं जा रही हूँ।'

परेश ने सर उठाया। उर्मिला चली गई थी। उसका पुराना प्रेम, पुरानी ललक फिर उमड़ रही थी। उसका जी भीतर से कचोटने लगा। उर्मिला और कुछ देर वहाँ खड़ी रहती तो उसे अच्छा लगता। उसका जी चाहा कि दौड़ कर उर्मिला को वापस बुला ले। पर—

इतने में ही उसकी युवती बहन भागती हुई आई।' 'भैया, ऊपर चलो, अम्मा को क्या हो गया।'

परेश घबड़ाकर मकान के ऊपर वाले हिस्से पर पहुँचा। उसकी माता बुरी तरह से बिलख रही थी। बिलखना तो उसका नियम बन गया था। पर, इस समय के विलाप मे बड़ा दर्द था। सुबह तड़के से ही उसके सर में तथा नेत्रों में घोर पीड़ा हो रही थी।

पर, अधिकांश भारतीय स्त्रियों की तरह दवा करने से उसे परहेज था। परेश ने कहा था कि दवा ले आऊँ पर उसने मना कर दिया। बेटी सर दबा रही थी कि उसकी माता के नेत्र यकायक बहुत लाल हो गये और फिर कुछ क्षण मे उनमें प्रकाश ही नहीं रहा। नेत्रों की ज्योति जाती रही। मां बेटी चीख पड़ीं।

परेश के कुछ समझ में ही नहीं आया कि क्या करे। डाक्टर को घर बुलाने के लिये पैसा न था। वह रिक्शा ले आया और माता को बिठाकर अस्पताल ले गया। जिस डाक्टर ने उसके पिताजी का इलाज किया था, उन्हीं की ड्यूटी थी।

डाक्टर साहब ने परीक्षा ली। उनका चेहरा उतर गया। अँग्रेजी मे वे परेश को समझाने लगे ताकि उसकी माता न समझ सके। सारांश मे उन्होंने बतलाया कि मस्तिष्क पर रक्त-चाप इतना बढ़ा कि भयङ्कर सर दर्द होने लगा। नेत्रों मे खून उतर आया है। किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा कराई जाय, पटना या कलकत्ता मे, सम्भव है ठीक हो जावे। तुरन्त कुछ दवा वे देगे। सुई भी लगावेगे। डाक्टर साहब ने आगे कहा—'आंखों के विपय मे हमारा देश बढ़ा दुखी है। इस देश मे लगभग पांच लाख अन्धे हैं जिनमे लगभग आधे तो इसलिए अन्धे हो गये हैं कि उनकी चिकित्सा न हो सकी। संसार भर मे जितने अन्धे है उनका पांचवां हिस्सा भारत मे है। इतने अन्धे हमारे लिए बड़ी भारी समस्या बन गये हैं।

परेश को ससार या भारत के अन्धे नहीं दिखाई पड़ रहे थे। उसे अपनी माता की चिन्ता थो। अस्पताल मे ही बैठे-बैठे उसके मन मे ध्यान आया—यह उर्मिला मेरे जीवन का सबसे बड़ा अपशकुन है। यदि यह न आती तो यह दुर्घटना भी न होती। उसकी माता ने सुई लगवाई। दर्द कुछ कम हुआ। पर नेत्रों मे ज्योति नहीं थी। सामने अन्धेरा देखकर उसका जी

इतना घबड़ा रहा था कि वह कुछ व्यक्त नहीं कर पाती थी। जी चाहता था कि सर पीट ले।

पति चला गया, वह लुट गई। आंखें चली गईं—वह नष्ट हो गई। अब उसके जीवन में बचा ही क्या है। अब वह कुछ न देख सकेगी। परेश की बहू का मुँह नहीं देख पायेगी। दामाद का मुख नहीं देख सकेगी। जब परेश का हाथ पकड़कर उसकी माता अस्पताल से निकली, दया से, करुणा से, मां के प्रति ममता से परेश का दिल भर आया। उसने सोचा—पिताजी ने इसी अस्पताल मे कहा था—'मै ऐसा वैसा लड़का नहीं हूं।' मै अपनी माता की सेवा करके यह साबित कर दूँगा। मैं अपनी माता के नेत्र वापस ले आऊँगा।

(२०)

उर्मिला कैसे घर पहुँची, वह या हम कोई नहीं कह सकता। किसी प्रकार वह घर वापस आई। पिताजी से उसने दो-चार शब्द परेश के दुख के बाबत कहे। अपने कमरे में चली गई और तकिये पर सर रख कर जी भर कर खूब रोई। रोने से जी हल्का होता है। उसका जी हल्का नहीं हुआ। तरह-तरह की भावनायें उसके दिल मे उटती रहीं, वह सोचती जाती थी, रोती जाती थी।

शाम होते-होते वह कमरे के बाहर निकली। माता के मरने के बाद चूल्हा-चक्की उसे ही सम्भालना पड़ा था और अब वह कुछ सीख-समझ गई थी। बिना मन के वह चौके में घुसी और पिताजी के लिये भोजन बनाने मे लग गई। फिर भी नेत्रों से आँसू टपक ही पड़ते थे।

पिता जी को भोजन कराते हुए उसने बड़े प्रेम से उनसे कहा—'बाबू जी, मैं अब पढ़ाई बन्द कर दूँगी। आपकी सेवा करूँगी।'

राधा बाबू का कौर उनके गले में अटक गया। पानी से ग्रास को गले के नीचे ढकेलते हुये उनके नेत्र छलछला आये। पत्नी के बाद उनका अब और कौन था—बेटी। सोचते थे कि किसी प्रकार उसकी पढ़ाई समाप्त कर नगर में ही किसी से ब्याह देंगे। घर जमाई रख लेंगे। उर्मिला को अच्छे काम में लगा देंगे। बेटी का परिश्रम तथा घर-गृहस्थी में लग जाना उन्हे बड़ा अच्छा लगता था। उन्हे उस पर दया भी आती थी।

बेटी पराये घर की थाती होती है। माता उसे बचपन से ही जीवन की यात्रा के लिये तैयार करने की धुन मे लग जाती है। उसे अपना जीवन सामने रखकर बेटी को तैयार करना पड़ता है। पर पिता की ममता अधिक होती है। वह अपने जीवन संघर्ष की बाते सोचकर अपने बेटे को तैयार करता है पर बेटी को अपने सामने सुखी रखना चाहता है। ससुराल जायेगी, जो चाहे करे। पर उसके सामने तो आराम से रहे। प्राय: पति-पत्नी मे बेटी के मसले पर विवाद भी चलता रहता है।

राधा बाबू कभी कभी सोच बैठते थे कि अपनी पत्नी को खो बैठे। बेटी को कैसे सुखी रखे। वह कालेज चली जावेगी तो उनकी गृहस्थी का क्या होगा। पर, यह भी सोचते थे कि उसे जाने दे। अपने स्वार्थ मे उसका भविष्य, उसका सुख क्यों बिगाड़े। अब उनकी बेटी ही उनके प्रश्नों का उत्तर दे रही है। उनसे इतना ही कहते बना—'बेटा, जो उचित समझो करो। पर एक साल की पढ़ाई क्यों खराब करती हो।'

'मुझसे अब न पढ़ा जावेगा। मैं नौकरी करूँगी। मै सदैव आपके पास रहूँ,' कहते कहते उर्मिला फूट फूट कर रोने लगी।

राधा बाबू स्पष्ट समझ गये कि उसका तात्पर्य है कि वह विवाह भी नही करेगी! वे कुछ न समझ सके कि ऐसा निश्चय

क्यों किया जा रहा है। उन्हे इस निश्चय के प्रति पुत्री का त्याग ही दिख पड़ा। वे पुचकार कर बोले—'पढ़ाई को जी न चाहे, बन्द कर दो। अभी पूरा जीवन पड़ा है। नौकरी की भी अभी क्या चिन्ता है। मैं तो हूँ। हां, कोई अच्छा लड़का देखकर तेरे हाथ पीले कर दूँगा और जमाई को घर में रख लूँगा।'

उर्मिला का जी धक् धक् होने लगा। वह परेश को प्यार करती है। परेश उसे ठुकरा सकता है। वह नहीं। वह किसी और का हाथ न पकड़ेगी। उसने दृढ़तापूर्वक, संकोच छोड़कर कहा—'मैं केवल आपके पास रहूँगी।'

राधा बाबू का जी दुःख रहा था। वे अधिक भोजन भी न कर सके। राधा बाबू अपनी पत्नी की भी बुरी आदत जानते थे कि अधिकांश गम्भीर तथा परेशानी की बातें केवल भोजन के समय ही होती थीं। शायद भारत की बहुत बडी संख्या की नारियों मे यही अवगुण है। शायद यह इसलिये है कि उनको अपने पति से परामर्श करने का कोई निश्चित अवसर नहीं मिलता। उर्मिला ने कुअवसर इतनी बड़ी चर्चा छेड़ दी थी। वे अधिक बोल भी न सके। सोचते सोचते थाल पर से उठ गये।

उर्मिला रात भर सो न सकी। मन में तूफान जो था। सबेरे उठी। पिता जी के लिये जल्दी से भोजन बना कर होस्टल से अपना सामान लेने चल पड़ी। जब वह होस्टल में अपना सामान बटोरने लगी, उसकी सहेलिया आ गईं। सभी उसके दुःख से दुःखी थीं। उसकी बिदाई से सभी को मार्मिक पीड़ा हो रही थी। अपनी सहानुभूति में वे और कुछ न कह सकी, केवल इतना ही कि उसका सामान बंधवाने मे सहायता देने लगी। उर्मिला बड़ो भली लड़की थी। बड़ो सरल-स्वभाव की, नेक, मिलनसार, हँस मुख और कालेज के खेल-कूद, नाच, नाटक,

सब मे वह उत्साह से भाग लेती थी। उसके चले जाने से सब को एक सूनापन का अनुभव हो रहा था।

बड़ी शान्ति से उर्मिला सब काम कर रही थी। कोई उतावलापन था ही नहीं। सामान बांध कर वह सीधे प्रोफेसर साहब के घर जा पहुँची। दरवाजे पर पर्दा पड़ा हुआ था। द्वार खुले थे। राधा के चले जाने के बाद केवल अपनी कक्षा मे पढ़ा कर वे घर चले आते और फिर कहीं न जाते। धीरे-धीरे लोग राधा का लापता होना भी भूल रहे थे। किसको इतना अवकाश है कि संसार की सब विपत्तियों को याद रखे।

उर्मिला को भीतर से कुछ आवाज़ें आती सुनाई पड़ी। वह द्वार पर ही, ज़रा कोने में होकर ठिठक गई।

प्रोफेसर साहब अपनी पत्नी को समझा रहे थे—'समय बहुत बदल गया है। अब विवाह का वह पुराना महत्व नहीं रहा। तुम व्यर्थ बहुत सोचती हो। सोवियट रूस और चीन मे युवक युवतियों का सम्बन्ध एक दम स्वतन्त्र कर दिया गया है। विद्यार्थी जीवन वहां का जैसा भ्रष्ट है, वह हमारी कल्पना के परे है, पर वे लोग उसे बुरा नहीं मानते। मैंने कम्यूनिस्ट समाचार पत्र 'नोवा कल्चरा' मे पढ़ा था कि 'अब वह ज़माना लद गया जब पुरुष और स्त्री एक का हाथ पकड़ कर जीवन भर निबाह देंगे।' कम्यूनिस्ट देशों मे विवाह यदि धार्मिक रीति से हुआ और सिविल मैरिज़ कानून से न हुआ तो नाजायज़ समझा जायेगा। पोलेण्ड, बलगेरिया हंगरी आदि मे नाजायज़ बच्चों को उनके संसार मे आने के पूर्व ही अन्त करना ग़ैर कानूनी नहीं है अब।

उनकी पत्नी बीच मे कुछ टोकती जाती थी पर उनकी बात उर्मिला को सुनाई नहीं पड़ती थी। प्रोफेसर साहब ने स्पष्ट कहा,

'हमारे देश में भी तलाक कानून बन गया। धार्मिक रीति के विवाह को यह सरकार भले ही न बन्द करे, कोई और सरकार आयेगी जो अधिक उन्नत होगी, वह समाप्त कर देगी। आखिर स्वराज्य के बाद से हमारे मुल्क मे २५०० नये क़ानून बने हैं। उनमे एक और जुड़ जावेगा। पचवर्षीय योजना के कारण शहर के रहने वालों की आमदनी बढ़ रही है। हमारे प्रदेश की विधान सभा मे मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने २६ दिसम्बर, १६५७ को कहा भी था कि सन् १६४८-४६ मे की शहराती व्यक्ति की आमदनी ५५६ रुपया वार्षिक का औसत था। १६५७ मे ७४५ रुपया हो गया। अब ऐसी दशा में आदमी के जीवन का स्तर ऊँचा होगा तो विचार का स्तर भी ऊँचे उठेगा ही।

'तब देश नष्ट भी हो जायेगा। जब चालचलन ही खराब हो जायेगा तो रुपया पैसा लेकर क्या होगा। मै कुछ नहीं जानती। राधा बाबू ने हमारे मुख में कालिख पोत दी।'

उर्मिला और अधिक बाहर न ठहर सकी। प्रोफेसर के व्याख्यान पर उसे क्रोध चढ़ आया था। कमरे में पैर रखते ही उसने प्रोफेसर से कड़े स्वर मे कहा—'मेरा पत्र लाइये। मैं कालेज जा रही हूँ।'

पति-पत्नी दोनों उठकर खड़े हो गये। प्रोफेसर का चेहरा उतर गया। वे आश्चर्य से बोले—'कैसे पत्र!'

'मेरा पत्र, परेश के नाम, मुझे अब कोई शर्म नहीं है।'

प्रोफेसर ने अपनी पत्नी की ओर देखा। पत्नी की क्रूर आंखें उर्मिला पर गड़ी थीं। उसके लिये उर्मिला 'सौत' थी—उसके पति का चरित्र बिगाड़ने वाली! क्या इसी रूप पर वे रीझे हैं।

(२१)

प्रोफेसर की पत्नी उर्मिला की ओर बढ़ी। प्रोफेसर कुछ सोच न सके कि क्या कहे उर्मिला सम्भल भी न पाई थी कि ज़ोर का एक तमाचा उसके गाल पर पड़ा। वह तिलमिला उठी। प्रोफेसर की पत्नी उसे लडखड़ाते देखकर एक घूंसा उसको और दे बैठी। घूंसा नाक पर पड़ा और उर्मिला की नाक से खून बहने लगा।

प्रोफेसर की पत्नी क्रोध मे भयावनी हो रही थी। उसने चिल्लाकर कहा—'मेरा घर सत्यानास करने आई है डायन।'

बाहर कोई सवारी रुकी। बाल बिखराये, बदहवास-सी राधा कमरे में दाख़िल हुई और अपनी मां से चिपटकर रोने लगी। उर्मिला की साड़ी का एक हिस्सा रक्त से तर हो चुका था। वह अपनी नाक दबाये बैठी थी। फर्श पर। राधा और उसकी माँ का चिपट कर एक दूसरे से रोना देखकर वह अपना दु:ख भूल गई थी। प्रोफेसर से इतना भी नहीं हुआ कि पानी ला दे ताकि वह नाक और हाथ धोले। वह एक दम सकते मे खड़े थे।

बाहर तांगा वाला चिल्ला रहा था—'किराया दो, सामान उतारो।' कोई सुन नहीं रहा था। दो-चार मिनट मे मालकिन की रुलाई सुनकर नौकर दौड़ आया था। पर, इसी समय दोनों हाथ से तांगे पर का सामान उतारे मनोहर कमरे में दाखिल हुआ। उसने पूछा—'इतना ही सामान है न! मैंने सब देख लिया।'

कोई कुछ न बोला। मनोहर ने उर्मिला को जिस दशा में देखा वह अवाक् रह गया। कुछ सोचकर वह बाहर निकला। तांगे वाले को पैसा देकर भीतर आया। नौकर से बिना कुछ

कहे वह मकान के भीतर चला गया। एक लोटा पानी उसने उर्मिला के सामने रख दिया और बिना किसी से कुछ कहे कमरे के बाहर चला गया।

राधा माता से चिपक कर रो रही थी। रो रो कर वह कहती जाती थी—'मां, मुझे माफ करो। मैं मुँह में कालिख लगा आई। मैं किसी काम की न रही। विनोद निहायत चाण्डाल निकला। मैं अपना ज़ेवर वगैरह बेचकर जब कंगाल होने लगी तो एक दिन वह मेरा बचा-खुचा रुपया लेकर चम्पत हो गया। पता भी न चला। मैं फिल्म वालों के दरवाजे पर भटकती, ठोकर खाती रही। बहुत से उसमें बड़े गन्दे लोग हैं। मुझे नौकरी भी न मिली। कान के फूल बेचकर मैं वापस आ सकी।'

फूट फूट कर रोते रोते वह यह सब कह गई। प्रोफेसर बहुत अप्रतिम हो रहे थे। अपनी लड़की के दुख, उसका परिणाम आदि से उतना नहीं जितना कि इसके कि सब उर्मिला के सामने हो रहा है। उर्मिला सब सुनती जाती थी और लोटे के पानी से अपनी नाक का रक्त भी धोती जाती थी।

राधा का ध्यान उर्मिला की ओर गया। वह चौंक कर बोली—'अरे उर्मिला! क्या बाबू जी के पास रहने लगी! इसी की चाल ने मेरा दिमाग़ खराब किया!'

अब उर्मिला और न सह सकी। रक्त बह जानेसे वह कमज़ोरी का अनुभव कर रही थी। फिर भी किसी प्रकार उठी और उसने अपनी साड़ी का रक्त से सना हिस्सा ढकने का प्रयास किया। वह कमरे के बाहर हो गई।

जाते समय उसने सुना—राधा की माता कह रही थी—'जाय सत्यानाशिनी।'

उर्मिला रोना चाहती थी। सिर धुनकर रोना चाहती थी। पर उसके कमरे मे सहेलियां, सहपाठिनी लड़कियां उसका

सामान ठीक कर रही थीं। एक लड़की इस चिन्ता में थी कि वह कुछ सामान छोड़ जाय तो उसका काम चले। एक यह सोच रही थी कि यह कमरा अच्छा है। मैं इसमे चली आऊँगी। उर्मिला ने अपनी चोट लगने की कहानी गढ़ कर रक्त का कारण समझा दिया। जल्दी से साड़ी बदली और दूसरे दिन सामान उठा ले जाने का विचार प्रकट कर जल्दी से वहां से चल पड़ी।

वह ज्यों ही अकेले हुई, उसका जी डूबने लगा। उसे अपनी माता की बड़ी-बड़ी आंखे उससे यह अन्तिम प्रश्न करते दिखाई पड़ीं—'क्यों उर्मिला!'

हां, क्यों उर्मिला! तुमने क्या किया। तुम अब कहां जाओगी। क्या करोगी। तुम्हारे पिता ने अभी तक तुमसे नहीं पूछा कि 'क्यों उर्मिला!' इतनी बाते हो गईं पर उनके कान तक क्या कुछ न पहुँचेगा। परेश यदि उसे अपना लेने को तैयार होता तो यह सब कुछ न होता। उसने उसे दुष्टा कहा। प्रोफेसर की पत्नी ने डाइन कहा। राधा भी अपनी मां की आवाज़ में 'सत्यानाशिनी' कह रही थी। मनोहर ने उसका पत्र पढ़ लिया है। अब—क्यों उर्मिला।

उर्मिला अन्धी, बहरी बनी सड़क की पटरी पर चली जा रही थी। आख़िर उसका ध्यान खिंचा। राधा को भ्रष्ट करने वाला विनोद पुकार रहा था।

'क्या है?' डपट कर उर्मिला ने पूछा। विनोद उसके सामने आ गया। शाम हो चली थी। कालेज से शहर जाने वाली सड़क पर सन्नाटा था।

विनोद ने प्रेम पूर्वक पूछा—'कैसी तबीयत है। प्रोफेसर से कैसा निभ रही है!'

उर्मिला इस समय आपे से बाहर थी—'तुम कौन होते हो मुझसे बाते करने वाले!'

'वाह डियर, मैं कोई नहीं। बड़ी कठिनाई से तो उस राधा नागिन से जान छुड़ा कर भागा हूँ। वह तो मेरे गले पड़ गई थी। आजकल की लड़कियां भी क्या तमाशा होती हैं।'

'शरम नहीं आती मुझ से बातें करने में। तुम लोगों ने अपना जीवन नष्ट करने के साथ हमारा जीवन नष्ट कर दिया है। तुम्हारे मां-बहिनें नहीं हैं।'

'अच्छा आप नेता बन रही हैं।'—कहते हुए विनोद ने उर्मिला का हाथ पकड़ लिया।

जितनी ज़ोर से हो सका उर्मिला ने उसे तड़ातड़ चपत्ते जड़ दी—'तुम हो पुरुष, एक लड़की का हाथ पकड़ते शर्म नहीं आती।

विनोद ने कभी किसी लड़की के हाथ से मार नहीं खाई थी। उसके पुरुषत्व के विरुद्ध यह इतना बड़ा अनादर था कि वह सहन न कर सका। उर्मिला ऐसी दुर्बल लड़की को पिटते-गिरते, चोट खाते कितनी देर लगती थी। एक बार वह पिट चुकी थी। दुबारा मार खाकर वह जमीन पर गिर पड़ी। सड़क की पटरी का किनारा पत्थर से जड़ा हुआ था। उसका सर फट गया।

वीर विनोद !! उसने उस बिचारी को वहीं छोड़कर चुपचाप भागने का प्रयत्न किया. पर दो मज़बूत हाथों ने उसे कसकर पकड़ लिया। कालेज के हिन्दी के अध्यापक प्रोफेसर जनार्दन नित्य सायंकाल दो-चार मील घूमने जाया करते थे। उन्होंने विनोद को पकड़ते हुये कहा—'क्यों रे बदमाश ! इस बिचारी को क्यों पीट रहा है ! यदि कोई तेरी बहन को इसी तरह पीटता तो तेरे दिल पर कैसी गुजरती !'

विनोद ने प्रोफेसर जनार्दन को भी दो-चार हाथ लगाना चाहे। किन्तु, जिस विद्यार्थी ने अपनी जवानी में सिगरेट-पान

दुराचार से ही खेलना सीखा हो उसके एक सदाचारी प्रोफेसर के समान शक्ति नहीं हो सकती। इतनी ही देर मे दो-चार अध्यापक और आ गये। उर्मिला को अस्पताल पहुँचाने का प्रबन्ध हुआ। विनोद को लोग थाने पर ले चले।

प्रायः यह सभी महिला रोगियों का अनुभव है कि महिला रोगी का जितना अच्छा प्रबन्ध मरदाने अस्पताल मे होता है, महिला अस्पताल मे नहीं। महिला महिला के प्रति न जाने क्यों उदासीन रहती है। उर्मिला को चोट आई थी, घातक नहीं। होश में जल्दी आ गई। राधा बाबू अस्पताल पहुँच गये थे। वहां का प्रबन्ध देखकर वे अपनी बच्ची को घर लिवा गये। दुर्बल उर्मिला खाट पर गिर पड़ी।

रात ज्यादा बीती थी कि मनोहर आ गया। राधा बाबू उदास नीचे बैठे थे। वे इस समय इतने दुखी थे कि एक साधारण परिचित नवयुवक को अकेले मिलने से रोकना भी नही चाहते थे। मनोहर उर्मिला के कमरे मे चला गया।

(२२)

उर्मिला खाट से लग गई। मन का, शरीर का, घाव का बुखार एक साथ उसे त्रस्त कर रहा था। उस रात को जब मनोहर उसके कमरे मे आया था, उसके नेत्र आधे खुले, आधे बन्द थे। मनोहर को सामने देखकर उसका जी चाहा कि उसे कमरे से निकाल दे। उसी ने तो उसका पत्र पढ़ लिया है। पर मनोहर से कुछ कहने के पहले भी वह बड़ी नर्मी से बोला—'उर्मिला बहन !'

आज तक कालेज के किसी छात्र ने उसे 'बहन' कहकर सम्बोधित नहीं किया था। आज तक किसी छात्र ने अपने नेत्रों में बहन की भावना भर कर उसकी ओर देखा तक न था।

लड़कियाँ आँख पहचानती हैं। उर्मिला के कोई भाई न था। उसे 'बहन' शब्द बड़ा मधुर लगा। उसने अनायास कह दिया—'क्या है भइया!'

मनोहर को रोमाञ्च हो आया। वह खाट के पास खड़ा होकर बोला—'चिन्ता मत करो। ठीक हो जाओगी। सब कुछ ठीक हो जावेगा। हां, मुझे कुछ देना है—' कहकर उसने उर्मिला का पत्र (परेश के नाम) उसके हाथ पर रख दिया।

उर्मिला उसके मुख की ओर देखती रही।

मनोहर ने उस पत्र की कहानी सुनाते हुये कहा—'मुझे ऐसा लगता है कि इस पत्र के बारे मे तुमको और परेश को काफी उलझन है। मै इसे वापस करने की सोच रहा था। आज तुम सामान लेकर होस्टल से जाती, मैं इसे दे देता। पर दूसरा ही काण्ड हो गया। विनोद को कल जेल भेज दिया जावेगा। मै प्रोफेसर साहब से बाते कर आया हूँ। राधा भी मुकद्दमा दायर करेगी। ऐसे मामलों मे समाज का भय छोड़कर पतित को दण्ड देना होगा। तुम लोगों पर कोई आँच न आने पायेगी।'

कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोला - 'मै सोचता हूँ कि यह कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैने इस पत्र को पढ़ा नहीं है। पर मेरा भगवान् साक्षी है। मै किसी अन्य का पत्र नहीं पढ़ता। मुझे ऐसा लगा कि इस पत्र के पाने मे तुम अधिक स्थिर होगी। अतएव इसी समय मै चला आया।'

उर्मिला एक टक उसकी ओर देखती रही। सचमुच में यह साधु है। ऐसे ही विद्यार्थी भारतीय विद्यार्थियों का मस्तक ऊँचा किये रहते हैं। मनोहर पूछ रहा था—'मेरी बातों पर विश्वास करोगी!'

उर्मिला ने कहा—'अवश्य'—और फिर ज़रा देर में बोली—'भैया, परेश बाबू से सब हाल बता देना।'

मनोहर चौंका—कुछ समझ भी गया।

उस रात उर्मिला को बड़ी अच्छी नींद आई। पर मनोहर को नींद न आई। उर्मिला ने यदि परेश को पत्र का समाचार बतलाने के लिये कहा था तो अवश्य कोई बात होगी। वह शीघ्र ऐसा करे—क्या बात होगी। एक पत्र का इतना महत्व हो गया। क्या इस पत्र से और परेश की नाराज़गी से तो कुछ सम्बन्ध नहीं है।

दूसरे दिन, दिन चढ़ते वह परेश के घर पहुँचा। प्रोफेसर जनार्दन बैठे थे। मनोहर को देखकर परेश की भौहों में कुछ बल अवश्य आया। प्रोफेसर जनार्दन कह रहे थे कल शाम की घटना। उर्मिला का पिटना। परेश उद्विग्न हो रहा था। उसे चोट लग रही थी। उर्मिला का शरीर, हाथ पैर ही सही, किसी ने, किसी अन्य ने स्पर्श किया और उसे पीट तक दिया यह उसे अच्छा नहीं लगता था। उर्मिला से उसे विरक्ति थी, पर इतनी अधिक तो नहीं थी कि वह उर्मिला का इतना संकट चुपचाप सुने। और, यह सब मनोहर के सामने कहा जा रहा था।

प्रोफेसर जनार्दन कह रहे थे—'जिसे देखिये वही आज के विद्यार्थियों से यह अनुरोध कर रहा है कि वे अपना चरित्र निर्माण करे। डा० सम्पूर्णानन्द मुख्य मन्त्री ने लखनऊ मे छात्रों से २८ जनवरी (१९५८) को कहा है कि विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा इसलिये दी जा रही है कि वे अपने देश की रक्षा करे तथा अपने चरित्र का निर्माण करें। लखनऊ विश्वविद्यालय मे दीक्षान्त भाषण देते हुये बिहार के गवर्नर डा० जाकिर हुसेन ने कहा है कि चरित्र का निर्माण आवश्यक है तथा शिक्षा ऐसी हो

जिसमे उत्पादन शक्ति हो।' शिक्षा स्वयं एक विशद उत्पादन है। यदि हम सचमुच विद्यार्थी बने तो कोई किसी की उन्नति रोक सकता है। तुमने आज पढ़ा कि नहीं कि सन् १९५७ मे लखनऊ विश्वविद्यालय से ही ३३८८ विद्यार्थी-छात्रायें बी० ए० आदि पास करके निकले हैं। इनमे ८०० लड़कियां हैं। पिछले साल ६६६ ही थीं। कुल सफल छात्रों मे से बी० ए० पास करने वाले ९९०, बी० एस० सी० ४९६, बी०कॉम० ३०१ तथा वकालत पास करने वाले ३३३ हैं और ४३२ एम० ए० और १२६ एम० एस० सी० पास होकर निकले है। प्रदेश में पांच विश्वविद्यालय हैं। यही औसत सब जगह का होगा। हां गोरखपुर विश्व-विद्यालय अभी नया है। क्या इतने छात्रों तथा छात्राओं मे दस प्रतिशत भी चरित्र तथा शिक्षा मे, विद्या तथा देशभक्ति मे दक्ष तथा योग्य हैं! यदि हों तो इस देश का भविष्य कितना उज्जवल हो जायगा।'

मनोहर बीच मे बोल उठा—'इसकी जिम्मेदारी किस पर है।'

प्रोफेसर जनार्दन ने शान्तिपूर्वक कहा—'हम पर, तुम पर, सब पर जिम्मेदारी है। यदि हम अध्यापक केवल इतनी भावना छोड़ दे कि हमें पढ़ाने का पैसा मिलता है, इसलिये पढ़ाते हैं तथा विद्यार्थी यह भावना छोड़ दे कि परीक्षा इसलिये पास करनी है कि नौकरी मिलेगी तो हम दोनों सुधर जावे। हम अध्यापक का वेतन बढ़ाने का आन्दोलन करते हैं। अवश्य हमारा वेतन कम है। पर संसार में ऐसा कोई देश नहीं जहाँ अध्यापक का वेतन अन्य नौकरियों की तुलना मे कम न हो। इंगलैंड के अध्यापक सौ वर्ष से आन्दोलन कर रहे हैं। अमेरिका-सयुक्तराज्य अमेरिका मे औसतन सात आठ सौ रुपया माहवार पाने वाला साधारण अध्यापक कुली से भी कम कमाता है। सोवियत रूस

में यदि अध्यापक की पत्नी भी मजदूरी न करे तो दोनों भूखों मरें। आवश्यकता है कि वेतन बढ़े। पर भारत के अध्यापक केवल वेतन का अन्दोलन करते हैं। अपने कर्तव्य पालन का, देश सेवा का नहीं करते। जो करते हैं उनको हम मूर्ख तथा 'नेता' समझते हैं। भारत का छात्र समाज योग्यता मे किसी से कम नहीं है। पर, उसको याद नहीं रहता कि जीवन में नौकरी ही सब कुछ नहीं है। जीवन सबसे ऊपर है। यदि अपनी चाल-चलन, अपना व्यवहार ठीक रहा तो विद्या भी साथ देगी।'

परेश बड़े ध्यान के साथ प्रोफेसर जनार्दन की बाते सुन रहा था। जनार्दन जी उठते हुये बोले—'अच्छा मैं चलूँ। तुमको देखने का जी लगा था। आज मेरी कक्षाये देर से चलेगी। इसीलिये सोचा कि इधर आ जाऊँ। फिर यह भी देखना था कि विनोद जेल जा रहा है। सुना है कि कल रात को ही उसके पिताने उसे छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया। पर असफल रहा। ऐसे पिता भी अपनी सन्तान के शत्रु होते है।'

मनोहर तथा परेश उठकर प्रणाम कर रहे थे। दरवाजे तक पहुँचते-पहुँचते प्रोफेसर जनार्दन ने कहा—'हा परेश, तुम पढ़ाई छोड़ ही रहे हो तो डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा मे बैठो। आज ही पब्लिक सर्विस का विज्ञापन छपा है। योग्यता होगी तो सफल होगे। और, तुम योग्य हो।'

जनार्दन चले गये। कुछ देर तक दोनों साथी चुपचाप बैठे रहे। परेश परीक्षा की सोच रहा था। सोच रहा था माता को पटना ले जाकर दिखलाने की। पर पैसा कहां था ? मनोहर सोच रहा था कि बात कैसे शुरू हो। अन्त मे परेश ने ही पूछा—'कहिये कैसे पधारे ?'

मनोहर ने उर्मिला से जो कुछ कहा था, सब सुना दिया। यह भी कह दिया कि उर्मिला ने आदेश दिया था, इसलिये

कहने आया है। परेश उर्मिला का तात्पर्य समझ गया। मनोहर ने पत्र नहीं पढ़ा, यह भी बिश्वास हो गया। मनोहर के प्रति उसका मन साफ़ हो गया। दोनों मित्र घुल-घुल कर बातें करने लगे।

मनोहर की बात परेश ने मान ली। वह मनोहर के व्यय से माता को पटना ले जायेगा और खजाने में पब्लिक सर्विस कमीशन की फीस दाखिल कर डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा में बैठेगा।

(२३)

उर्मिला की चोट जितनी मालूम पड़ती थी, उससे अधिक थी। वह खाट से लग गई। ज्वर रहता था। नाक पर सूजन थी। सिर में दर्द बना रहता था और पेट की हालत भी अच्छी नहीं थी। बीमारी ने उसके रूप का तेवर बिगाड़ दिया था।

राधा बाबू चिन्तित रहने लगे। मनोहर रोज़ आता और उसके पास मे बैठने से उर्मिला को सुख मिलता, राधा बाबू के मन में पहले तो खटका, ऐसा लगा कि यह मित्रता कुछ अच्छी नहीं है पर मनोहर इतनी सादगी से उर्मिला 'बहिन' कहता था कि उनका खटका जाता रहा। मनोहर भी उर्मिला को प्राय: परेश का समाचार सुनाया करता। उर्मिला को अच्छा लगता। वह कहना चाहती थी, पर कह नहीं पाती थी कि परेश उसे देखने आ जाता। पर वह क्यों आयेगा 'उसके' पास !

उर्मिला की असली बीमारी परेश था। मनोहर ने इसे धीरे धीरे समझा पर उसे क्या पता कि परेश के 'दुष्टा' 'डाइन' शब्द नित्य उर्मिला के कलेजे मे नीचे से नीचे धँसते चले जा रहे थे और उनके घाव से कलेजा चलनी होता जा रहा था। उसने परेश का क्या बिगाड़ा है ?

मनोहर से सब हाल मिलता था। परेश पी० सी० एस० (डिप्टी कलक्टरी) की परीक्षा दे आया। कहता है कि पर्चे बहुत अच्छे हुये हैं। 'इण्टरव्यू'—व्यक्तिगत परीक्षा के लिये भी बुलाया गया है।

परेश अपनी माता को पटना अस्पताल पहुँचा आया है। घर मे अकेली बहिनों को कैसे छोड़ जाता। उनको भी पटना पहुँचा आया है। एक प्राइवेट वार्ड ले लिया। बिचारा बड़े खर्च मे पड़ गया है पर माता की दशा सुधर रही है। सर का दर्द बहुत कम हो गया है। नेत्रों की ललाई कम होती जा रही है। कुछ प्रकाश आ रहा है। अभी दो महीने और लगेगे। बिचारा बड़े खर्च मे पड़ गया है। भगवान उसका भला करें।

उर्मिला बड़े चाव से यह सब समाचार सुना करती। हमने महीनों का समाचार संक्षेप में दे दिया है। मनोहर परेश को बराबर पत्र लिखा करता था। जब कभी वह एक दो दिन के लिये घर आ जाता, उससे मिल आता। परेश के पत्रों को वह उर्मिला को जब सुनाता तो उसे ऐसा लगता कि पत्र के समाप्त होते ही वह बहुत उदास हो जाती। जिस उत्कण्ठा तथा तत्परता से वह पत्र सुनना शुरू करती, वह समाप्ति पर चेहरे को धूमिल करके छोड़ देती। कुछ दिनों मे मनोहर ने कारण समझा। किसी पत्र मे उर्मिला का जिक्र न होता।

प्रयाग से 'इण्टरव्यू' देकर जब परेश दो दिन के लिये घर आया तो मनोहर ने उससे दबी जबान से कहा—'उर्मिला बीमार है। दो महीने हो गये। देख आओ।'

परेश चौक उठा। उसे धक्का लगा। उर्मिला बीमार है—उसे देख आये! उसकी भौंहें सिकुड़ीं, चिन्ता की झलक उठी। पर, जिस पिता ने उसे 'ऐसा-वैसा' नहीं समझा था, उसी पिता की हत्या का कारण बनने वाली! छिः !!

परेश ने कोई उत्तर नहीं दिया। मनोहर और आगे न कह सका। अब उसने हरएक पत्र मे, जो भी पत्र पटना भेजता, उर्मिला का समाचार, परेश के लिये उर्मिला की चिन्ता का मन गढ़न्त वर्णन इत्यादि लिखना शुरू किया। आखिर एक पत्र के उत्तर में परेश ने लिखा—

'माता जी करीब करीब स्वस्थ हैं। इलाज करते तीन महीने भी तो हो गये। डाक्टरों ने कहा है कि दस दिन में घर जा सकती हैं। कुछ महीने चश्मा लगाना पड़ेगा, वही धूप वाला काला चश्मा। वे नेत्र पाकर बहुत प्रसन्न हैं। नेत्र की पुनः प्राप्ति ने उनका दु:ख आधा कर दिया। समय बीतते बीतते उनका दु:ख भी कमजोर पड़ रहा है। पहले पिता जी के लिये दिन-रात रोती थीं। अब दो चार दिन बाद आंसू बरस पड़ते हैं। डाक्टरों ने डरा दिया है कि रोयेगी तो आंख चली जावेगी। हमें भी एक कारण मिल गया है, जिससे उनको रोने से रोक सकता हूँ। आंख और वैधव्य के बीच संघर्ष मे आंख जाती रही है।

'पर उनकी चिन्ता का सबसे बड़ा कारण मेरी बहन हो रही है। जब आँख खुलने लगी तो उसे देख-देखकर चिल्ला उठती हैं—'हाय रे मेरी सुन्दर बेटी, कहां से रुपया लाऊँगी कि तेरा विवाह करूँगी। उनका दु:ख दूर करने के लिये मैंने भी पटना में, प्रयाग में, अपने शहर में कई जगह बातें कीं। लोग शादी नहीं करना चाहते, लड़का बेचना चाहते है। जो सभा मच पर स्वाधीनता तथा समानता की, समाज-सुधार का जितना ही लम्बा व्याख्यान देता है, उसके लड़के का उतना ही बड़ा मूल्य है। वर का मूल्य उसकी शिक्षा योग्यता पर निर्भर करता है। बी० ए० पास तो अपनी पूरी पढ़ाई का खर्च निकाल लेना चाहता है। कालेज में प्रगतिवादी है। घर पर कितना पतित है!

'और एक आश्चर्य की बात बतलाऊँ। ग़नीमत है कि मेरी बहिन बी० ए० पास नहीं है। बहुत से पढ़े-लिखे लड़के कालेज की पढ़ी-लिखी लड़कियों पर शंका करते हैं। उलटी हवा बह रही है। पहले पढ़ाई की पूछ थी, अब उल्टा हो रहा है। मैं तो हैरान हूँ। बहिन को पहेली बिकट हो गई है। एक साहब जो डिप्टी कलक्टर बने हैं, वे ऐसी अप्सरा चाहते हैं जो समाज मे उनकी 'सोशल लाइफ' (सार्वजनिक सामाजिक जीवन) ऊँचा कर सके। छि: ! मेरी बहिन सुन्दर है, अप्सरा नहीं है और मैं उसका ऐसा उपयोग भी नहीं चाहता।

'हां, याद आ गया। तुमने कई बार उर्मिला के बारे में लिखा। ऐसी क्या बीमारी है कि अच्छी नहीं हो रही है ! मुझे अब चिन्ता होने लगी है। क्या लिखूँ—खैर जाने दो। उससे मेरा नमस्ते तो कह ही देना।'

मनोहर इस पत्र को कई बार पढ़ गया। पत्र लेकर वह उर्मिला के घर जा रहा था। मार्ग मे प्रोफेसर जनार्दन मिल गये। साथ साथ चलने लगे। मनोहर ने परेश की बहिन की परेशानी बतलाई तथा विवाह के सौदे की बात चली।

प्रोफेसर बोले—'यह तो होना ही था। कालेज में दूसरों की इज्जत को अपनी इज्जत न समझने वाले सभी विद्यार्थी पढ़ी-लिखी लड़कियों पर अविश्वास करते हैं। जब उनकी बेटी बड़ी होकर कालेज जायेगी, तब देखना कि वे कितने सशंकित और दु:खी रहेगे। पर, सच तो यह है कि हमारे देश की सभ्यता ऐसी है कि विदेशों मे जहां पर एक साथ लड़के-लड़की पढ़ते हैं, जितना भ्रष्टाचार है, उसका दसवां हिस्सा भी हमारे देश मे नहीं है। तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि सन् १९५३ मे अमेरिका के मिस्सिसिपी के एक ऐसे औद्योगिक विद्यालय मे, जहां केवल लड़कियों को उद्योग धन्धे की शिक्षा दी जाती थी,

था। उर्मिला की ओर देखता जाता था। उर्मिला का ज़िक्र आते ही रोगी के चेहरे पर ललाई दौड़ गई। नाक की तकलीफ भी जैसे कम हो गई। जब मनोहर आया था, उर्मिला की सांस फूल रही थी। वह भी शान्त हो गई। मनोहर ने उर्मिला का सन्देह मिटाने के लिये पत्र का वह भाग सामने कर दिया।

लाज छोड़कर उर्मिला ने कहा—'फिर पढ़ो भइया!'

राधा बाबू कमरे में आ गये। उदास स्वर मे बोले—'बेटी, तुमने सुबह से एक बूँद दूध नहीं पिया है। बहुत कमज़ोर हो जाओगी। ज़रा-सा दूध पी लो।'

उर्मिला चट से खाट पर बैठ गई और कटोरा भर दूध पी गई। मनोहर उसकी ओर सजल नेत्रों से देखता रहा।

(२४)

आख़िर तार आया कि परेश माता के साथ वापस आ रहा है। मनोहर कई बार घर का चक्कर लगा आया। ट्रेन का समय उसने दिया नहीं था। न जाने किस गाड़ी से आये। दूसरे दिन पहुँचा—परेश घर में बैठा था। सर झुकाये। चिन्ता की बातें भी थीं। अभी तक मनोहर की सहायता से माता का उद्धार तो हो गया। पर सब व्यय मारे संकोच के उसने नहीं लिया था। कहां तक बोझ डालता। इलाहाबाद भी कई बार जाना पड़ा था। माता के दो जेबर और बिक चुके थे। घर-गृहस्थी भी कैसे चलेगी। नौकरी का कोई ठिकाना नहीं—ठौर नहीं लग रहा है। पब्लिक सर्विस कमीशन हो आया पर भाई, उसकी सिफारिश नहीं थो, कैसे वह चुना जावेगा।

मनोहर को देखकर परेश उठ खड़ा हुआ। उसने आज पहली बार मनोहर को गले लगा लिया। मां को पुकार लगाई—मां, मनोहर आया है। मनोहर अब घर का लड़का था। माता उसके

उपकार से दबी थीं। परेश की बहन भी भीतरी द्वार तक आ गई। माता धीरे-धीरे नीचे आईं—जीने से उतरने में उनका दम फूल रहा था। बेटी को दरवाजे से हटाते हुये वह कमरे में आ गईं मनोहर ने पैर छुये।

कुशल समाचार के बाद बातें होने लगीं। माता ने बाते करते करते कहा—'बेटा, परेश बड़ा दुखी रहता है। देखो न सूखता जा रहा है। नौकरी लगी नहीं। गहना वगैरह हैं नहीं। कैसे काम चलेगा। लड़की छाती पर खड़ी है। तेरे जैसा कोई लड़का मिल जाता।'

मनोहर सर झुकाये बैठा रहा। यकायक उसने माता के पैर छू लिये—'माँ मैं ही हाजिर हूँ। मैं अपनी माता पिता से कह दूँगा। मुझे कुछ लेना देना नहीं है। प्रोफेसर जनार्दन ने सच कहा था।'

परेश उठकर खड़ा हो गया। माता का मुँह विस्मय से खुला रह गया। द्वार के पास खड़ी परेश की बहन भीतर भाग गई। सकुचा कर। माता ने मनोहर को छाती से लगा कर कहा—'मेरे लाल'—और नेत्रों से आँसू ढुलक पड़े। मनोहर उत्तेजित था। उसने परेश का हाथ पकड़ा। 'बाहर चलो जरूरी काम है।'—परेश बाहर निकला। 'कहां' पर मनोहर उर्मिला के घर की ओर जा रहा था।

(२५)

उर्मिला के द्वार पर पहुँच कर मनोहर ने परेश का हाथ कसकर पकड़ लिया—'परेश, मैंने तुम्हारी चिन्ता दूर की। मैं तुम्हारी बहन से विवाह कर रहा हूँ। तुमको मेरी बहन से विवाह करना होगा।'

परेश भौंचक्का रह गया—'तुम्हारी तो कोई बहन नहीं है।'

'उर्मिला'—मनोहर ने कहा।

परेश सक्ते में आ गया। मनोहर हाथ कसकर पकड़े था। कह रहा था—'तुम उसे प्यार करते हो। तुम उसे छोड़ नहीं सकते। तुमने उसके जीवन के साथ खिलवाड़ की है। तुमको यह अध्याय भी पूरा करना पड़ेगा।'

परेश कुछ कहना चाहता था पर द्वार पर राधा बाबू खड़े थे। उनकी आंखे डबडबायी हुई थीं। मनोहर को देखकर वे बोले—परेश को भी उन्होंने देख लिया था।

'आज बेटी की हालत बड़ी खराब है। सबेरे से ज्वर चढ़ा हुआ है। बकझक रही थी। डाक्टर आये थे। वे भी निराश से दिख पड़े। क्या करूँ। घर में कोई औरत भी नहीं है।'

परेश ने तुरन्त कहा—'मनोहर घर से मां को लिवा लाओ।' और स्वयं अपने घर जाकर वह लम्बे क़दम बढ़ाता राधा बाबू के साथ उर्मिला के कमरे में जा पहुँचा।

उर्मिला के सामने परेश था। वह पहिचान रही थी। पर, उसे सपना जैसा लग रहा था। यही कमरा है। यही खाट है। इसी समय की बात है। उसकी माता मृत्यु से लड़ रही थी। उर्मिला उसके सामने थी। माता ने उससे इतना ही पूछा था—'क्यों उर्मिला!' और प्रश्न अधूरा रह गया था। और इस समय, जब उसका दिल डूबा जा रहा है, परेश उसके सामने 'क्यों उर्मिला' प्रश्न का उत्तर बनकर खड़ा है! मां देख रही होगी। छिः सपना।

परेश ने राधा बाबू की ओर देखा। वे बहुत ही विक्षिप्त थे। उर्मिला में उनकी बेटी, उनकी पत्नी सब कुछ केन्द्रीभूत थी। परेश ने सङ्कोच छोड़कर ज़ोर से पुकारा—'उर्मिला मैं हूँ परेश!'

उर्मिला की बड़ी बड़ी आंखें प्याले की तरह चौड़ी हो गईं। अपने नेत्रों में परेश को पूरी तरह भरते हुये उसने धीरे से कहा—'आ गये।'—और फिर बेचैनी से हाथ पटकने लगी। परेश उसकी खाट पर बैठ गया। राधा बाबू को कुछ सूझ नहीं रहा था। वे फिर डाक्टर को बुलाने का प्रबन्ध करने चले गये।

परेश उर्मिला का हाथ सहालने लगा। उर्मिला ने फिर नेत्र खोले। अब उसके नेत्रों से दो आंसू ढुलक पड़े। परेश ने अपने हाथों से ही आंसू पोंछते हुए कहा—'उर्मि'

आज बहुत दिनों बाद उर्मिला ने अपना प्यारा नाम 'उर्मि' सुना—'उर्मि, तुम जल्दी अच्छी हो जाओ, मैं तुमसे विवाह करूँगा।'

उर्मिला के मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई। उसने बड़े मीठे स्वर से कहा—'अच्छा ?' और न जाने कहां से शक्ति बटोर कर उठ बैठी—उठकर परेश की गोद में लुढ़क पड़ी। 'अच्छा' उच्चारण करने वाला मुँह खुला रह गया। फिर कभी बन्द न होने को।

मनोहर परेश की माता को लेकर पहुँचा। राधा बाबू डाक्टर लेकर आये। मनोहर को परेश के घर में एक तार मिला। परेश डिप्टी कलक्टर के चुनाव मे सफल हो गया है! बधाई! तार हाथ मे लिये वह उर्मिला के कमरे में दाखिल हुआ।

निर्जीव उर्मिला को गोद में लिये परेश फूट-फूट कर रो रहा था।